मुद्रक व प्रकाशक—
माधव विष्णु पराड़कर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी। ७२४-९८

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

मूल्य बारह आने

समर्पण

अपनी पत्नी

अनसूया (फूलकुमारी) की

पुण्यस्मृतिमें

सस्नेह समर्पित

तुमको पाकर जो अपने अविवेकके
कारण न सीख सका सो तुम्हें
खोकर अपने सन्तापमें
सीखना पड़ा

उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बांधवः ।।

समझानेका प्रयत्न किया है और जातीय दोषोंका निरूपण करते हुए उनके निवारणके उपायोंको बतलानेकी भी चेष्टा की है। समाप्त होते ही यह लेखमाला मैंने साप्ताहिक 'आज' में प्रकाशित करनेके लिये उनसे माँग ली। उन्होंने सहर्ष उसे मेरे पास भेज दिया और यह अनुमति दी कि मैं जिस तरह चाहूँ उसका उपयोग करूँ।

उस समय यूरोपीय महायुद्धका आरम्भ हुए एक वर्षसे अधिक बीत चुका था और सत्याग्रह आन्दोलन भी शुरू हो गया था। अपने पत्रमें इस स्थितिकी चर्चा करते हुए उन्होंने मुझे लिखा— "संसार इस समय एक विलक्षण युगसे निकलकर न जाने किस दूसरे युगमें जा रहा है। चारों तरफ बड़े-बड़े काम हो रहे हैं परन्तु हम सब किंकर्तव्य विमूढ और अकर्मण्य होकर बैठे हैं। मेरे मनमें भी नाना प्रकारके व्यर्थके विचार आते रहे हैं। मनको स्थिर करनेके लिये और अपनी व्याकुलताको दूर करनेके लिये, किसी तरह मैंने इस लेखमालाको भी समाप्त ही कर डाला। जैसा आप जानते हैं, मैं अपने देशवासियोंकी प्रकृतिसे बहुत ही परेशान रहा हूँ। मेरे यही विचार रहे हैं कि जिस तरह व्यक्तिगत प्रकृति व्यक्तिगत जीवनको प्रभावित करती है, उसी प्रकार सामूहिक और राष्ट्रीय प्रकृति सामूहिक और राष्ट्रीय जीवनको भी प्रभावित करती है, और देशोंके इतिहासका विकास उसके अनुसार होता है। साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि यत्न करनेपर प्रकृतिमें भी परिवर्तन हो सकता है और देशके लिये मैं आवश्यक समझता हूँ कि हम अपनी राष्ट्रीय प्रकृतिमें परिवर्तन करें जिससे हम अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकें, और वर्तमान दुर्व्यवस्थासे छुटकारा पावें"।

इसी दृष्टिसे यह लेखमाला लिखी गयी है। सम्मान्य लेखकने इसमें भारतीयोंकी राष्ट्रीय प्रकृतिका ही उल्लेख करते हुए घटना-क्रमका वर्णन किया है। सम्भव है, इसमें कुछ गल्तियाँ हो गयी हों। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि आपने भारतके इतिहासकी रूपरेखा हमारी राष्ट्रीय प्रकृतिके आधारपर खींचने और उसी प्रकृतिके अनुसार घटनाओंको भी समझने-समझानेका जो यत्न किया है, वह अत्यन्त स्तुत्य है। यद्यपि ये लेख एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं तथापि मुख्यतः समाचारपत्रोंके लिए लिखे जानेके कारण ये पृथक् पृथक् भी पढ़े जा सकते हैं और एक प्रकारसे एक दूसरेसे स्वतन्त्र और अपनेमें ही सम्पूर्ण भी हैं।

अपने देशके व्यक्तिवादसे श्री श्रीप्रकाशजी विशेष चिन्तित रहे हैं। उपर्युक्त पत्रमें ही वे लिखते हैं—"इस व्यक्तिवादमें ही मैं अपनी खराबियोंका मूल देखता रहा हूँ। खराबियोंसे मेरा अर्थ यह है कि इस प्रकृतिके कारण हम अपनेमें ही इतना मस्त रहते हैं कि हम मिलकर अपने विरोधियोंका न सामना कर पाते हैं, न अपने ही हितके लिये कुछ काम कर सकते हैं। जब कोई देश अपना स्वराज्य खो देता है तो अपना प्राण खो देता है और पर-राजकी अवस्थामें न अपने लिये कोई जाति कुछ कर सकती है, न दूसरोंके लिये। मैं अपने भाइयोंमें नागरिकताका बड़ा अभाव पाता हूँ और मेरा दृढ़ विश्वास है कि नागरिकता सीखकर हम अपना कल्याण बातकी बातमें कर सकते हैं। मेरी यही आशा है कि व्यक्तिवादको छोड़कर नागरिक धर्मको अपनाकर हम अपना उचित स्थान शीघ्र ही संसारमें प्राप्त कर सकेंगे।" अस्तु, यदि

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

(१)

देशका इतिहास

क्या हमारे देशके इतिहासका किसीको कुछ पता है। दन्त-कथाओं, परम्पराओं, पौराणिक रूढ़ियोंके अतिरिक्त हमारे पास अपने पूर्व पुरुषोंको जाननेकी सामग्री ही क्या रही है। अवश्यही वे हमारे लिये ग्रंथों और भवनोंके रूपमें अपनी विभूति छोड़ गये हैं। क्रमबद्ध इतिहास रखनेका हमें आज भी शौक नहीं है, पहले की तो कथा ही क्या। हमें समयके क्रमके अनुसार घटनाओंको जाननेमें कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता, उसका हमारी दृष्टिमें कोई मूल्यही नहीं है। ऐसी मनोवृत्तिमें यदि इतिहासका हमारे यहाँ अभाव रहा हो तो क्या आश्चर्य। जब मुसलमान हमारे देशमें आये तो उन्हें हमारा यह अभाव बड़ा खटका। वे स्वयं इतिहास प्रेमी थे और उनके समयसे इतिहास-का पता अच्छी तरह लगता है। अँगरेज तो बहुत दिनोंसे इतिहास प्रिय लोग रहे और इनके समयका इतिहास तो है ही, साथही साथ पुराने सिक्कों, ताम्रपत्रों, खण्डहरों आदिकी सहायता से इन्होंने हमारा भी पुराना इतिहास लिख डाला है। इसे देख और पढ़कर हमें अपने प्राचीन पुरुषोंका गर्व होता है। हमारे मनमें यह भावना पैदा हुई है कि हम भी उनकी तरह चमक सकें और अपना भविष्य अतीतकालसे भी अधिक सुन्दर बनावें।

मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि आर्य लोग भारतके ही पुराने निवासी हैं या कहीं बाहर से आये। मैं यह तो मान ही लेता हूँ कि भारत भूमिपर नरनारी सहस्रों वर्षोंसे बसते हैं। मैं यह भी मान लेता हूँ कि बाहर से लोग इस भूमिपर और यहाँके लोग बाहर बराबर आते जाते रहे। भिन्न भिन्न जातियोंका मिश्रण सब ही जगह होता रहा है। भारतमें तो यह मिश्रण बहुत जोरोंसे हुआ है। बहुतसे कारणोंसे देशके अन्दर ही एक स्थानके लोग दूसरे स्थानोंपर आते जाते रहे जिससे वर्तमान भारतखण्डकी एक प्रकारसे एकता कायम हो गयी और यदि अपने इतिहास, परम्परा, दन्तकथा आदिसे एक बात सिद्ध होती है तो यह कि हमारे देशके विशिष्ट पुरुषोंने — चाहे वे भारतके किसी कोनेके रहे हों, चाहे वे बाहरसे ही क्यों न आये हों — सारे भारतखण्डको एक माना और उनका यही प्रयत्न रहा कि भारत हर प्रकारसे एक बना रहे। राजनीतिक और सांस्कृतिक, दोनोंही रूपसे वे इसे एक बनाना चाहते रहे। सारे देशपर वे एक राज्य रखना चाहते थे और धार्मिक सामाजिक आदि आचार विचारके प्रचारसे उसका बाह्यरूप भी एकही करना चाहते रहे। इसका प्रभाव साधारण जनता पर भी पड़ता ही रहा और उनके मनमें भी नाना प्रकारसे देशकी एकताका भाव बना ही रहा।

पुरातन कथाओंमें हमारे पास रामायण और महाभारतकी कथाएँ हैं। रामचन्द्रजी अयोध्यासे चलकर लंका अर्थात् उत्तरसे दक्षिण गये और वानरी जातियोंकी सहायतासे उन्होंने एक महाराष्ट्र कायम करनेका प्रयत्न किया। युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया अर्थात् सारे देशको अपने हाथमें किया पर आन्तरिक फूटके कारण उनका साम्राज्य नष्ट हुआ। अशोक, हर्षवर्धन, अकबर, शिवाजीकी — और पीछे क्लाइव और हेस्टिंग्सकी

—चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं। सबने ही राजनीतिक दृष्टिसे सारे भारत-खण्डमें एक राज फैलानेका प्रयत्न किया। यदि सांस्कृतिक दृष्टिसे हम विचार करें तो बुद्ध और शंकराचार्य इसी देशमें चारों ओर भ्रमण करते रहे और अपने धार्मिक विचारोंका प्रचारकर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपने केन्द्र बनाते रहे। भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें जो भक्त पैदा हुए उन्होंने भी अपनी कथा देश भरको सुनायी। हिमालयसे कन्याकुमारी तक, द्वारकासे जगन्नाथपुरी तक सबने अपना कार्यक्षेत्र मर्यादित किया और इस भूखण्ड-को हर तरहसे एक करनेका प्रयत्न किया। जिस किसी दृष्टिसे देखा जाय, भारतवर्ष वास्तवमें एक भूखण्ड है, यह एक देश है, और यहाँके सब प्रदेशोंके रहनेवालोंका यही आदर्श रहा है कि यह एक बना रहे, उनकी यही आकांक्षा और अभिलाषा रही कि हमसे जो कुछ बने इस एकताको बनाये रहनेमें हम सहायक हों, और हमारा देश अखण्ड रहकर, अपनी कृतियोंसे उज्वल उदाहरण उपस्थित कर, अखिल संसारका पथ-प्रदर्शक बन प्राणिमात्रकी सेवा करे।

---

(२)
आदर्शोंका भंग

यद्यपि अपने देशके विशिष्ट जनों और हमारे पूर्वजोंका यही आदर्श रहा कि भारत भूखण्ड एक देश और एक अखण्ड राष्ट्र रहे, पर ऐसा कभी हो न सका। यह आदर्श हमारे हृदयके अन्दर ही रह गया। जब कभी किसी विशेष प्रतिभाशाली व्यक्तिका आविर्भाव होता था तब यह एकता सम्पन्न होती थी, पर उसकी मृत्यु होते ही फिर देश छिन्न-भिन्न हो

जाता था। एकताकी परम्परा आध्यात्मिकरूपसे तो बनी रहती थी, पर लौकिक दृष्टिसे नहीं के बराबर हो जाती थी। रामचन्द्रके समय एक राष्ट्र कायम हुआ, पर कथा यही है कि उनकी मृत्यु पर अयोध्याके सब ही नर-नारी उन्हींके साथ डूब गये और इस घटनाकी याद इस समय भी फैजाबादका गुतार घाट दिलाता है। महाभारतके भीषण रणके बाद साम्राज्य पाकर भी सब पाण्डव भाई हिमालयके पहाड़ोंमें गल गये। उनके साथ ही साथ उनका राष्ट्र भी लुप्त ही हो गया होगा। अशोक, हर्षवर्धन, अकबर सबके ही बादकी यही कथा है। विशिष्ट पुरुष राष्ट्रको एक करता है, उसके शक्तिशाली हाथोंके हटते ही राष्ट्र छिन्न-भिन्न हो जाता है और फिर वही काम दूसरेको करना पड़ता है और वही परिणाम फिर-फिर होता है। यह कथा बड़ी ही करुण है। विचारवानका हृदय दुःखी होता है कि देशमें इतनी सम्भावनाओंके रहते हुए भी हम कुछ कर नहीं पाते। हमारी बृहत् जनसंख्या और हमारे बीच योग्यसे योग्य व्यक्तिके होते हुए भी, हमारा पद संसारमें न कभी कुछ रहा, न इस समय ही है। इस स्थितिपर विचार करना अत्यावश्यक है।

जब किसी बड़े समाजमें किसी आदर्शका समावेश हो जाता है तो उसे अच्छा ही समझना चाहिए। पर यदि वह कार्यतः सिद्ध न हो सके या उसमें कोई अपरिहार्य त्रुटि हो तो अवश्य उसे छोड़नेका ही यत्न करना चाहिए। मनुष्यकी शक्ति और प्रकृतिके अनुकूल ही उसका आदर्श भी होना चाहिए। यदि यह उसके परे हो जाता है तो वह व्यर्थ ही नहीं हानिकर भी हो जाता है। हम भारतकी अखण्डताके आदर्शको अच्छा, साथही संभाव्य समझते हैं और इस कारण इस बातकी विवेचना करना चाहते हैं कि हम इसे कार्यान्वित क्यों नहीं कर पाये, यद्यपि सहस्रों वर्षोंसे इसके

लिये प्रयत्न कर रहे हैं। हममें क्या त्रुटि है कि हमारे उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो पा रही है और उस त्रुटिका निवारण किस प्रकारसे हो सकता है जिससे हम अपनी आकांक्षा और अभिलाषाको प्राप्त कर सकें। अपने देश और देशवासियोंमें अवश्य कोई आन्तरिक बल है जिससे इतने धक्के खाने पर भी ये केवल विद्यमान ही नहीं हैं, अपने व्यक्तित्व और महत्व का परिचय भी बराबर देते रहते हैं। बाहरके लोगों और विचारोंको यह अपनेमें समाविष्ट करते रहे और कर्षित होने पर भी जीवित रहे। अन्य पुरातन जातियोंकी तरह यूरोपीय लोगोंके सम्पर्क और आक्रमणसे यदि हम भी मर गये होते तो हमें कुछ कहना न रहता, पर जब ऐसा न हुआ, न होनेकी सम्भावना ही है, तो हमें स्थितिपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर अपनी रक्षा करना आवश्यक है।

भारतकी अखण्डताका आदर्श क्यों अच्छा है, इसपर भी विचार कर लेना उचित ही होगा। मनुष्यकी प्रवृत्ति, उसका कार्यक्रम, आचार-विचार बहुतसे कारणोंपर निर्भर करते हैं। प्राकृतिक कारण अवश्य ही सर्वश्रेष्ठ होते हैं। पहाड़ और समुद्र, जाड़ा और गर्मी, मरुस्थल और उर्वरभूमि, भोजन और आच्छादनके साधन, ये हमपर सदा प्रभाव डालते रहते हैं। इनके अनुकूल मनुष्य अपनेको बनाता रहता है। इनसे लड़ते हुए और प्रतिकूल स्थितियोंपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता और अनुकूल स्थितियोंके सदुपयोग करनेकी योग्यतापर उसका स्थायित्व, उसकी विशेषता, उसका जीवन, उन्नति, सभ्यता, उसका अभ्युदय या पतन निर्भर करता है। यद्यपि भौगोलिक दृष्टिसे भारतका भूखण्ड बहुत बड़ा है और साधारण मनुष्यकी प्रकृतिकी दृष्टिसे इसे एक बनाये रहना संभव नहीं है, तथापि उसी भौगोलिक दृष्टिसे यह एक ही खण्ड प्रतीत भी होता है और सहस्रों

वर्षोंकी परम्पराके कारण कई बातोंमें भेद होते हुये भी इस खण्डमें एकही प्रकारके लोग भी स्थायी रूपसे बस गये हैं। मोटे तौरसे उत्तरमें हिमालय पर्वतकी दीवार और दक्षिण और पूर्व पश्चिमके अधिक भागमें समुद्रके किनारे हमारी नैसर्गिक सीमा हो रहे हैं। पूर्व और पश्चिमके जो भाग समुद्र और बड़े बड़े पहाड़ोंसे मर्यादित नहीं हैं वे भी बड़ी बड़ी नदियों और पहाड़ी दर्रोंसे अवश्य अंकित हो रहे हैं। थोड़ा बहुत परिवर्तन सीमाकी पंक्तिमें हो जैसा हमारे इतिहासमें बराबर होता रहा है, पर अधिक उलट-फेर नहीं हो सकता। वास्तवमें भारत एक देश है और उसे एक देश बनाये रहनेमें ही हमारा कल्याण है, हमारा अभीष्ट है, और अपनी विशेषताओंको दिखलाने और संसारके कार्यमें उचित भाग लेनेका हमारा साधन है।

---

(३)
हमारी प्रकृति

यद्यपि एक दृष्टिसे कहा जा सकता है कि मनुष्यकी प्रकृति समान होती है, अर्थात् सब ही मनुष्य प्रधान और मौलिक बातोंके संबन्धमें एक प्रकारका भाव रखते हैं — एक ही तरह आचार और विचार करते हैं — तथापि यह भी सत्य है कि भिन्न भिन्न मनुष्य एक ही अवस्थामें पृथक पृथक रूपसे आचरण करते हैं और जाति जातिकी भी प्रकृतिमें अन्तर होता है जो स्पष्ट रूपसे देखा और पहचाना जा सकता है। व्यक्तिगत शिक्षा-दीक्षाके कारण, व्यक्तिगत आर्थिक और सामाजिक स्थितिके कारण, व्यक्ति और व्यक्तिकी प्रकृतिमें भेद पाया जाता है जो उनके आचरणोंकी

परीक्षा करनेसे देखा जा सकता है। प्राकृतिक कारणोंके अधीन भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें बसकर समाज विशेषकी स्थापना करनेसे ,जातिगत प्रकृति भी पैदा हो जाती है जो भी जातिविशेषके नर-नारियोंके आचरणसे पहचानी जा सकती है। हम भारतवासियोंकी प्रकृतिकी क्या विशेषता है यह समझनेकी बात है क्योंकि हमारा आचार विचार इसीपर निर्भर करता है और इसे जानकर संभवतः हम अपने इतिहासके आन्तरिक प्रेरक कारणों और भावोंको भी समझने लगेंगे। संभव है, इन्हें समझकर हम अधिक तत्परतासे अपनेको सम्हालनेका प्रयत्न करें और अपने भाइयोंके साथ सहानुभूति रखें, उन्हें अधिक अच्छी तरह पहचानें और आगेके लिये उपयुक्त कार्यक्रम भी तयार कर सकें।

हमारे देशका जल वायु कुछ ऐसा है कि हमारी आवश्यकताएँ बहुत कम हैं और वे जल्दी ही पूरी हो सकती हैं। गर्म देश होनेके कारण वस्त्रादिकी बहुत आवश्यकता नहीं है और जमीन उपजाऊ होनेसे भोजनकी सामग्री भी बिना बहुत आयासके मिल सकती है। साथ ही हमारे यहाँका वातावरण बड़ा ही हानिकारक है। कोई भी वस्तु बहुत दिनोंतक नहीं ठहर सकती। हर प्रकारके कृमि-कीट सब चीजोंको नाश करते रहते हैं। मजबूतसे मजबूत भवन भी इस वातावरणमें शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। मनुष्यका जीवन भी बहुत छोटा होता है। हर प्रकारकी बीमारी चारो तरफ फैली रहती है, महामारी तकके फैलनेमें देर नहीं लगती, सर्पादिका भय घने वासस्थानोंमें भी सदा बना रहता है, जंगलोंके हिंस्र पशुओंका तो कुछ कहना ही नहीं। सब वस्तु, सब प्राणी बड़े ही अस्थायी से प्रतीत होते हैं। उनको स्थायी बनाना असंभव सा मालूम पड़ता है। एक तरफ तो हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति सरलतासे हो

जाती है, दूसरी तरफ हमारा जीवन बहुत थोड़े दिनोंका रहता है। यदि एक तरफ भोजन वस्त्रके लिये बहुत आयासकी आवश्यकता नहीं है, तो दूसरी तरफ मृत्युका भय सदा लगा रहता है। इन दो बातोंके आधारपर हमारा दर्शन और हमारा जीवन सब कुछ निर्भर करता है।

अपने शरीरकी आवश्यकताओंकी सरलतासे पूर्ति कर सकनेके कारण हमारे यहाँ नानाप्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार नहीं हुआ। वास्तवमें लौकिक विज्ञानके विविध अङ्गोंकी तरफ हमें उपेक्षा रही। हम कृषि के छोटे छोटे जरूरी यन्त्रोंसे और आत्मरक्षा और शत्रुओंपर आवश्यक प्रहारके साधारण आयुधोंसे ही सन्तुष्ट रहे। हल और फावड़ेसे हमारी खेती हो जाती थी, चरखे और करघेसे हमें वस्त्र मिल जाता था, हथौड़ी और आरीसे हमारा मकान बन जाता था, और एतदर्थ सब आवश्यक शिक्षा हाथों हाथ दी जा सकती थी। यदि जनसाधारण इतनेसे ही सन्तुष्ट हो जाँय तो कोई आश्चर्य नहीं। इस समाजमें जो मस्तिष्कके लोग उत्पन्न होते थे उन्हें यह दृश्य सदा सताता था कि हमारा जीवन बहुत ही थोड़ा होता है। वे जीवन मरणकी आध्यात्मिक और रहस्यमय गुत्थियोंके सुलझानेमें पड़ गये, उन्हें संसार अनित्य प्रतीत हुआ और वे नित्यके लिये कहीं और खोजमें गये। इसका परिणाम यह हुआ कि लोककी चिन्ता न करके वे परलोक की चिन्ता करने लगे, और संसारके समाजको अमर बनानेकी योजनाओंकी उपेक्षाकर वे अपने निजके अमरत्वकी फिकरमें लगे रहे। यही कारण है कि हमारा दर्शनशास्त्र जो हमारे जीवनका आधार है, वह शरीरका ज्ञान नहीं देता, वह आत्माका ज्ञान निरूपण करता है।

---

(४)

व्यक्तिवाद

जहाँ कृषि ही जीविकाका प्रधान साधन है, और अन्य सब रोजगार भी उसीसे सम्बद्ध है, वहाँ यह स्वाभाविक है कि भूमिके छोटे छोटे टुकड़े हों जिसकी भिन्न भिन्न व्यक्ति या उनका कुटुम्ब निजी सम्पत्तिकी तरह फिकर करे । वैज्ञानिक आविष्कारके होते हुए भी कृषिप्रधान मनुष्य-समाज बड़े बड़े गरोहोंमें मिलकर एक साथ काम नहीं करता। उसकी दृष्टि अपने ही तक सीमित रहती है, वह अपनी निजकी स्वतन्त्रता-की बड़ी आकाङ्क्षा रखता है और अपने इच्छानुसार और अपनी आवश्यकता पर्यन्त ही कार्य करना पसन्द करता है । अन्य व्यक्तियोंसे वह सामाजिक सम्बन्ध अवश्य रखता है क्योंकि मनुष्य सामाजिक जन्तु है, वह एकाकी नहीं ही रह सकता । साथ ही साथ और लोगोंसे कुछ कुछ आर्थिक सम्बन्ध भी उसका रहता ही है, पर अधिकतर वह स्वतन्त्र व्यक्ति ही बना रहता है । अपनी रक्षा आदिके लिये भी वह अपने ही ऊपर निर्भर करता है और यदि कोई राज प्रबन्ध हुआ तो उससे यथा संभव कम सम्बन्ध रखनेकी चेष्टा करता है । लौकिक रूपसे ऐसे समाजमें व्यक्तिवाद ही पैदा होता है । कल-कारखानोंमें संघटित रूपसे कार्य करनेकी प्रवृत्ति इस कारण होती है कि वहाँ किसी कार्यकर्ताके कार्यक्षेत्रका कोई भी अंश उसकी निजी सम्पत्ति नहीं होती और सबका समान हित किसी मालिकसे पुरस्कार प्राप्त करना मात्र होता है । यही कारण है कि ये ही लोग जो कृषककी हैसियतसे संघटन नहीं करते, मजदूरकी हैसियतसे बड़े उत्साहसे संघोंमें सम्मिलित होते हैं ।

हमारी शारीरिक आवश्यकताएँ इस प्रकारसे सुविधाके साथ व्यक्तिगत रूपमें कृषि करनेसे पूरी हो जाती हैं। साथ ही देशकी विशेष स्थितिके कारण हमारी शरीरयात्रा बहुत लम्बी नहीं होने पाती। इस समय हमारी औसत आयु केवल २३ वर्षोंकी है। बहुत छोटी ही उमरमें हम बूढ़े प्रतीत होने लगते है। हमारा जीवन बड़ा ही अनिश्चित रहता है। ऐसी अवस्थामें यदि विचारवानोंके मनमें संसारकी निस्सारता प्रतीत होने लगे और साथ ही उन्हें मृत्युसे भय भी बहुत मालूम हो तो क्या आश्चर्य। हमारा सारा दर्शनशास्त्र अर्थात् विद्वानों और बुद्धिमानोंकी विचार-शैली मृत्युके भयसे परिपूर्ण है और वे इसके निवारणके उद्योगमें इस दृष्टिसे नहीं लगे हैं कि हम औषधि आदिसे दीर्घायु हों, पर इस दृष्टिसे कि हम इस संसारके परे कोई जीवन खोज निकालें जो अजर और अमर हो। यह तो स्वतः सिद्ध है कि कोई दूसरोंकी मृत्युसे नहीं डरता। सब कोई अपनी मृत्युसे डरते हैं। स्वजनोंकी मृत्युसे दुःख होता है, पर अपनी मृत्युका बड़ा संताप रहता है। इस मृत्युके निवारणके खोजने, अपनेको अमर बनाने की अभिलाषाने, हमारे सब विचारको भी व्यक्तिवादी कर दिया। अपने उदरके पालनके लिये हमने व्यक्तिवादके सिद्धान्तके अनुसार ही कृषि की, हमने अपनी आत्माको अमरत्व देनेके लिये व्यक्तिवादी विचारोंका अवलंबन किया। हमारे समाजका क्या होगा, हमारे आगे आने वाले लोगोंका जीवन किस प्रकार अधिक सरल और सुखकर किया जाय, इस ओर न हमारा ध्यान गया और न उसके जाने की आवश्यकता ही हुई। हम पूर्ण तरहसे व्यक्तिवादी बन गये।

ऐसे लोगों में संघटनका होना बड़ा कठिन है। ऐसे नर-नारियोंके लिये समाजका स्थूहन करना असंभवप्राय है। ऐसे लोगोंमें इतिहास

नहीं लिखा जाता, निश्चित परम्परा नहीं कायम होती। ये मिलकर काम नहीं कर सकते। हर बात में, हर अवसर पर वे यही विचार करते हैं कि अमुक स्थितिसे, अमुक बातसे हमारी निजी क्या लाभ-हानि है, हमें किस प्रकारसे मोक्ष — लौकिक या आध्यात्मिक — मिल सकता है। हम यह नहीं सोचते कि इससे दूसरोंकी क्या लाभ-हानि है, सारे समाजपर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इससे यह विचार न करना चाहिए कि हम भारतीय स्वार्थी या स्वेच्छाचारी हैं। हमारे में दानादि देनेका बड़ा क्रम है, पर उसका भी मूलाधार व्यक्तिगत सतोषमात्र ही है, उसका उद्देश्य व्यक्तिगत धर्मकी पूर्ति करना ही है। वह समाजको सुदृढ करनेके लिये नहीं किया गया, वह अपने कर्तव्योंके पालनके अर्थ किया जाता है। सामूहिक रूपसे हमारे यहां मठ-मंदिर, धर्मशाला, यज्ञशाला आदि नहीं बनाये जाते। सब व्यक्ति-विशेषोंकी उदारतापर निर्भर करते हैं। अवश्य ही व्यक्तिवादी नरनारी स्थायी राष्ट्र नहीं तयार कर सकते, पर वे व्यक्तिगत विभूतियां अवश्य दर्शा सकते हैं। क्या यह कहना नितान्त सत्य नहीं है कि यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे देशने बड़ा चमत्कार दिखलाया है, पर सामूहिक रूपमें वह कभी भी कुछ नहीं कर सका है। हमारे सामने यह समस्या है कि हम अपने व्यक्तिवादकी उत्तमताको रखते हुए समूहवादको किस प्रकार अपना सकते हैं कि आजके संसारमें हम पनप सकें — न हम दास बने रहें, न दस्तु ही हो जाय।

(५)
वर्णव्यवस्था

भारतीय समाजकी विशेषता वर्ण व्यवस्था में ही देख पड़ती है। जब हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हम भारतवासी व्यक्तिवादी हैं, हमारी दृष्टि अपने शरीरकी आवश्यकताओंकी पूर्ति और अपनी आत्माके मोक्ष अथवा अमरत्वतक सीमित है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ऐसी अवस्थामें वर्णव्यवस्थाका प्रतिपादन कैसे हुआ था और कैसे हो सकता था। साधारण दृष्टिसे देखने से तो यही मालूम होता है कि वर्ण विभागद्वारा सारे संसारके संघटनका प्रयत्न किया गया था, मनुष्य समाजका स्थायी रूपसे संग्रंथन करनेका सफल प्रयत्न हुआ था। वर्ण व्यवस्थाका स्थूल अर्थ तो यही हो सकता है कि प्राणिमात्र अपने अपने धर्म अथवा कर्तव्योंका पालन इस प्रकारसे सदा करते रहें कि किसीको भी अनिवार्य कष्ट न हो, समाजका सब काम ठीक प्रकारसे चलता रहे, कदापि व्यर्थका परस्परका संघर्ष न होने पावे, और सुख और शान्तिके साथ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन बीते। यह आदर्श बहुत अच्छा और ग्राह्य प्रतीत होता है और जिन लोगोंने ऐसी विस्तृत कल्पना की वे वास्तवमें प्रशंसाके योग्य हैं। पर हम वर्णव्यवस्थाके सिद्धान्तोंको दूसरी ही दृष्टिसे देखते हैं। उसकी विवेचना करनेके पहले हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि वर्णव्यवस्थाका जो वर्तमान रूप है जिसे कितने ही लोग कुत्सित, गर्हित, पुराने विचारोंसे च्युत और उनका अपभ्रंश मानते हैं, उसीपर हमारा ध्यान नहीं है यद्यपि हम इसे उसी पुराने प्रबंधका अनिवार्य परिणाम मानते हैं। यहांपर हम उसके पुरातन ईप्सित रूपपर भी ध्यान दे रहे हैं।

वर्णव्यवस्थाका स्थूल रूप क्या है । इसे मानने वाले लोग भिन्न भिन्न जातियोंमें विभक्त रहते हैं और अपनेको जाति विशेषका सदस्य कहते हैं । उनकी जाति उनके जन्मपर निर्भर करती है और उनका धर्म अर्थात् जीवनयात्राके नियम आरम्भसे ही निर्धारित हो जाते हैं । यह व्यवस्था दो मूल विश्वासोंपर स्थापित है जो भारतके पुराने धार्मिक और सांस्कृतिक विचारोंका अपरिहार्य अंग माने गये हैं । ये हैं — कर्म और पुनर्जन्म । यहाँके दार्शनिकोंने जब यह देखा कि भिन्न-भिन्न लोगोंमें अन्तर होता है, कोई अधिक मेधावी, शक्तिशाली, भाग्यवान् होता है, कोई कम, तो उनका विचार यह हुआ कि जो जीव संसारमें जन्म लेता है वह अपने पुरातन कर्मोंका फल यहाँ पाता है । इसका अनिवार्य अर्थ यह भी हुआ कि जीवका जन्म बार बार होता है और पहले जन्मका फल वह इस जन्ममें पाता है और इस जन्मके कर्मका फल वह किसी दूसरे जन्ममें पावेगा । कर्मके सिद्धान्तसे मनुष्यको शान्ति, सान्त्वना, संतोष आदि मिलते हैं, और पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे आगेकी उन्नतिकी आशा होती है और साथ-ही अपनी अल्पायुसे न घबराकर वह सोचता है कि हमें यहाँ फिर-फिर आना है, हमारी कोई प्रियवस्तु खो नहीं सकती । यदि इन दो विचारोंकी अटल सत्यता हमारे मनमें सदा न बनी रहे तो हम कदापि वर्णव्यवस्थाको स्वीकार न कर सकते ।

इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि संसारके जितने काम हैं सब ही संसारको कायम रखनेके लिये जरूरी हैं । इसमेंसे किसी कामको ऊँचा और किसीको नीचा कहना अनुचित है । अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार व्यक्तिविशेष संसारके काममें भाग लेता है और अपना और संसारका काम चलाता है । किसी कामके प्रति घृणा करना अनुचित है,

किसीको विशेष प्रकारसे ग्राह्य मानना भी उतना ही अनुचित है। संसार का काम व्यक्तियों अथवा व्यक्तिसमूहोंमें किस प्रकारसे और किन शर्तोंपर बाँटा जाय यह प्राणिमात्रका सतत् और अत्यावश्यक कर्तव्य माना गया है। भारतके पुरातन पथप्रदर्शकोंने वर्णव्यवस्थाका प्रकार निकाला। इसके द्वारा जन्मसे ही हरएक व्यक्तिके लिये निश्चित हो जाता है कि वह क्या काम करेगा और उसके लिये समाजमें उपयुक्त स्थान भी उसके जन्मसे ही निर्धारित रहता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिये जन्मसे ही उसका पद और पेशा निश्चित कर देना वर्णव्यवस्थाका उद्देश्य है जिससे कि सब कामके लिये पर्याप्त संख्यामें और उपयुक्त योग्यताके लोग सदा प्रस्तुत रहें। कोई काम छोटा और कोई बड़ा न माना जाय। सब लोगोंका ही अपने-अपने समूह विशेषमें पर्याप्त स्थान और आदर हो। यदि कोई इससे असंतुष्ट हो तो वह यह सोचकर अपने संतापका संवरण करे कि हमारी गति हमारे ही कर्मोंके कारण हुई है और यदि हम अपने कर्तव्योंका पालन ठीक प्रकारसे करेंगे तो जो दूसरा स्थान हम अपने लिये अधिक अभीष्ट समझते हैं वह हमें दूसरे जन्ममें मिल जायगा और तब हम अपनी आकांक्षाकी पूर्ति कर सकेंगे। यह स्पष्ट है कि यदि धर्म और पुनर्जन्ममें विश्वास हमें न हो तो हम कदापि वर्णव्यवस्थाको माननेके लिये तैयार न हों।

---

(६)
वर्णाश्रमधर्म

भारतकी पुरानी विचार परम्परा जिसके आधारपर यहाँके समाजका संघटन करनेका प्रयत्न किया गया था, जिसके अनुसार हमारे आध्यात्मिक जीवनका भी निरूपण हुआ है, उसे भिन्न-भिन्न नाम दिया जाता है। आर्य-

धर्म, वैदिकधर्म, सनातनधर्म, मानवधर्म, वर्णाश्रमधर्म उसके कई नाम हैं और उसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओंको प्रदर्शित करते हैं। उसे इस समय साधारण रूपसे 'हिन्दूधर्म भी कहते हैं। पर इसका संभवतः सबसे उपयुक्त नाम वर्णाश्रमधर्म है। आर्यधर्मका तो अर्थ स्पष्ट है कि आर्यों अथवा सुसंस्कृत पुरुषोंकी यह जीवन-व्यवस्था है, यह बतलाता है कि शिष्ट और सभ्य लोग संसारमें किस प्रकार रहते हैं। वैदिक धर्मका अर्थ यह हो सकता है कि इसका आधार वेद है अर्थात् या तो वेद नामकी प्रसिद्ध पुस्तकें इसका मूलाधार हैं या यह ज्ञान, बुद्धि अर्थात् मनुष्यके मस्तिष्कके अनुकूल व्यवस्थाको बतलाता है। सनातनधर्मसे आशय उस धर्मसे है जो अनादिकालसे चला आ रहा है और अनन्तकालतक चला जायगा अर्थात् यह मनुष्यके अपरिहार्य प्रकृतिके अनुकूल है इस कारण अपरिवर्तनीय है। मानवधर्मका तो साफ अर्थ यही है कि मानव समाज अर्थात् मनुष्य मात्र-के संघटनकी व्यवस्था इसने की है। हिन्दूधर्म इसका नाम बहुत पीछे पड़ा जब सिंधु नदीके पश्चिम और उत्तरमें रहनेवाले लोग सिन्धुके पूर्व और दक्षिणमें रहनेवालोंको उस नदीके नामका अपनी भाषाके अनुसार अपभ्रंश करते हुए 'हिन्दु' पुकारने लगे और उनके धर्मको (मजहब, सम्प्रदाय, विचारधारा, समाजव्यवस्थाको) हिन्दूका नाम दे दिया। हिन्दूधर्म साधारण-मजहबोंकी तरह नहीं है, इसे समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि बिना इसे अच्छी तरह जाने भारतके इतिहास और भारतीयोंके सामाजिक और आध्यात्मिक जीवनको समझना ही असंभव होगा।

साधारणतः मजहब या सम्प्रदायविशेषका कोई प्रवर्तक होता है और उस प्रवर्तक की जीवनी और शिक्षा ही उसका आधार होती है। वह पुरुषविशेष उसके अनुयायियोंका आराध्य होता है और उसकी

जीवनीको पढ़ पढ़कर वे मुग्ध होते हैं और उसके कहे अनुसार वे जीवनको व्यतीत करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। यह विशेषता बौद्ध, ईसाई, और मुसलिम मजहबोंमें स्पष्ट रीतिसे दिखलाई पड़ती है। हिन्दू समाजके अन्तर्गत छोटे बड़े सब सम्प्रदायोंमें भी यही देख पड़ता है। पर जिस विचारपद्धति अथवा सामाजिक प्रकरणको हम हिन्दूधर्म कहते हैं, उसमें यह बात नहीं है। उसके कितने ही अभ्यन्तर सम्प्रदायोंमें ऐसा अवश्य है पर उसमें स्वयं न कोई विशेष प्रकार से आराध्य पुरुष है जिसने उसका प्रवर्तन किया हो, न किसी विशेष पुरुषकी शिक्षाका ही अनुसरण करनेवाले हिन्दू कहलाते हैं। यदि विवेचना की जाय तो किसी भी विशेष मजहबके अनुयायियोंके आचार विचारमें समता पायी जायगी, पर हिन्दुओंमें यह नहीं ही पायी जाती। हाँ, इनमें एक बात अवश्य पायी जाती है। प्रत्येक हिन्दू किसी न किसी वर्णका अवश्य होता है। किसी समयमें कहा जाता है, चारही वर्ण थे। पुरातन ग्रंथोंमें भी प्रायः चारका ही उल्लेख है, पर इस समय तो चार हजारसे अधिक वर्ण-उपवर्ण पैदा हो गये हैं। जो कुछ हो, और जो ही नाम क्यों न दिया जाय, हिन्दूका किसी न किसी वर्णका अपनेको बतलाना आवश्यक है, यही उसके मानका चिन्ह है, यही उसके हिन्दुत्वका प्रमाण है।

परन्तु वर्णके साथही साथ लगी हुई एक और बात है जिसपर इस समय बहुत ध्यान नहीं जा रहा है पर जिसका महत्व वर्णसे कम नहीं है। वर्ण जन्मसे ही लग जाता है, बिना वर्ण विशेषके हुए कोई व्यक्ति हिन्दू नहीं ही हो सकता, इस कारण वर्ण तो प्रचलित है, पर हिन्दुओंकी जो दूसरी विशेषता थी (अर्थात् 'आश्रम') वह लुप्तप्राय हो गयी है। जिस प्रकारसे वर्णने समाजका व्यूहन करनेका यत्न किया

जिससे परस्परके आर्थिक संघर्षकी कटुता मिट जाय और समाजका सब काम शान्ति और स्थिरतासे चले, उसी प्रकार 'आश्रम' ने व्यक्तिगत जीवनका क्रम निर्धारित किया जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन समुचित प्रकार से चला सके, अपने कर्तव्योंका पालन करे, अपने अधिकारोंकी भी रक्षा करे। व्यक्तिगत जीवनके कई आश्रम, कई भाग बनाये गये। प्रथम भागमें यह आशा दी गयी कि सांसारिक जीवनके लिये अपनेको योग्य बनानेके निमित्त मनुष्यको समुचित शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। इसके परेके भागमें उसे गृहस्थीमें प्रवेशकर अपना निर्दिष्ट पेशा उठाकर अपने सांसारिक कर्तव्योंका पूरी तरह पालन करना चाहिए। उसके बाद पेशेसे पृथक होकर अपना काम अपने पुत्रोंको सुपुर्द कर, उसे दूसरे लोककी चिन्ता करनी चाहिए और संसारके बन्धनोंसे स्वतन्त्र होकर संसारमें रहते हुए भी मरणानन्तर जीवनकी तयारी करनी चाहिए। इसके बाद अति वृद्धावस्थामें उसे संसार छोड़कर विचरण करना चाहिए और मृत्युका प्रसन्नतापूर्वक स्वागतकर अपना शरीर छोड़ना चाहिए। थोड़ेमें आश्रम भेदका यही सिद्धान्त और यही उद्देश्य था। सामाजिक जीवनमें जितना वर्णपर उतना ही व्यक्तिगत जीवनमें आश्रम पर जोर दिया गया था। निश्चित और विस्तृत प्रकारसे इन दोनों अवस्थाओंका निरूपण किये जानेके कारण भारतके पुराने धर्मका नाम वर्णाश्रमधर्म भी था और हमारी समझमें उसका सबसे ठीक और उपयुक्त नाम यही है।

(७)

वर्ण और आश्रम

हिन्दु समाजके आध्यात्मिक विश्वास कर्म और पुनर्जन्मका बाह्य सामाजिक रूप वर्ण और आश्रम है। बच्चा पैदा होते ही किसी वर्ण-विशेषका होता है। उसके संबन्धमें किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं होती। उसका काम जन्मसे ही निर्धारित होता है। वह क्या करेगा, क्या न करेगा, उसका भविष्य कैसा होगा इसको सोचनेकी किसीको भी जरूरत नहीं पड़ती। दुनियाको सब प्रकारके कामोंकी आवश्यकता है। उन कामोंको करनेवालोंकी भी आवश्यकता है। ऐसी अवस्थामें चिन्ता कैसी। उसी कामके अनुरूप और अनुकूल उसे आगे चलकर शिक्षा दी जाती है। उसके विवाहके संबन्धमें भी यह विचार नहीं किया जाता कि यह अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर ले तो विवाह किया जाय। आर्थिक स्थिति जन्मसे हो ठीक समझी जाती है। पैदाके साथ ही साथ बच्चेका भावी सामाजिक पद भी निर्णय हो जाता है। उस पदसे उसे कोई वंचित नहीं कर सकता जबतक कि वह स्वेच्छासे उस समाजविशेषके कर्मकाण्डके विपरीत कार्य कर स्वयं उससे पृथक न होना चाहे। उस पदसे ऊँचा या पृथक स्थान पानेकी उसकी अभिलाषा भी नहीं होती, साधारणतः इसकी संभावनाका वह विचार ही नहीं कर सकता।

हरएक व्यक्तिके लिये आर्थिक और सामाजिक पद अत्यावश्यक होता है। यह हिन्दू समाजमें जन्मसे ही सबको मिल जाता है। आरंभसे ही वर्ण हिन्दुओंके जीवनका अनिवार्य अंग हो गया जिसके द्वारा उन्हें रोजगारकी निश्चिन्तता और समाजमें उपयुक्त स्थानकी प्राप्ति हुई। प्रत्येक

व्यक्ति अपने रोजगारमें गर्व करता था। उसे उससे घृणा नहीं थी चाहे उस कामको कोई दूसरा कितना ही गंदा या छोटा समझे। वह अपने रोजगारके अस्त्रों और साधनोंकी उपासना करता था। उसे अपने वर्ण, साथ ही साथ उससे संबद्ध रोजगार और सामाजिक पदका बड़ा गौरव था। प्रत्येक हिन्दूका इस प्रकारसे वर्ण निश्चित हो गया। वर्णके साथ ही प्रत्येक हिन्दूका आश्रम भी होना चाहिए, अर्थात् उसे बतला सकना चाहिए कि वह किस आश्रमका है। वह अभी ब्रह्मचारी अर्थात् शिक्षा प्राप्त करनेकी अवस्थामें है, अथवा गृहस्थ है, अपने रोजगारमें लगा हुआ है, बीबी बच्चोंकी फिकर कर रहा है, अथवा पारलौकिक चिन्तनामें लगकर वानप्रस्थ है, या संसारसे सर्वथा विरक्त होकर संन्यासी हो गया है। पर रोजगारका होना और समाजमें पद पाना अर्थात् वर्णका निरूपण तो सांसारिक जीवनके लिये आवश्यक है, इस कारण यह तो स्पष्ट रूपसे मालूम पड़ता है, पर आश्रम मनुष्यके जीवनके लिये अनिवार्य नहीं है, इस कारण यह लुप्तप्राय हो गया है। तथापि इसकी आभा हममें मौजूद है और यद्यपि लोभ अथवा अन्य कारणोंसे हम उसे कार्यान्वित न करें, पर साधारणतः हिन्दुओंकी आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि गृहस्थीके कार्यको यथासंभव शीघ्र समाप्तकर हम परलोककी चिन्तना करें और अपनी संततिको सब कार्यभार देकर स्वयं किसी दूसरे स्थानपर चले जायँ और एकान्तमें ईश्वरकी उपासना करें और आत्मोन्नतिमें समय लगावें।

यदि देखा जाय तो वास्तवमें वर्ण और आश्रम भारतके हिन्दुओंमें ही नहीं है। मनुष्यके समाजकी आवश्यकता और मनुष्यकी आन्तरिक प्रकृतिके यह इतना अनुकूल है कि बिना जाने ही सब ही समाज इसके अनुसार कार्य करते हैं। सब ही स्थानोंमे पिता अपने पुत्रको अपना रोज-

गार सिखलाता है और उसीमें पुत्रका भी जीवन व्यतीत होता है। अधिकतर लोगोंका वर्ण इस प्रकारसे निर्धारित हो जाता है। सब ही लोग शिक्षा प्राप्तकर और तदनुरूप रोजगार कर, अवसर ग्रहण करते हैं, और ढलती उमरमें परोपकार, सार्वजनिक सेवा अथवा धार्मिक उपासनामें जीवन व्यतीत करते हैं। पर हिन्दूधर्मकी विशेषता यही है कि यह उसके शास्त्रोंमें विस्तारके साथ निहित है और उसके अनुयायी उसके अनुसार जीवन व्यतीत करनेका यत्न भी करते हैं। जन्मपर यहाँ जितना जोर दिया जाता है उतना अन्य स्थानोंपर नहीं दिया जाता और यहाँ जिस प्रकारसे धर्मका उसे अंग बना दिया है वैसा किसी अन्य स्थानपर नहीं है। हिन्दू इससे भाग नहीं सकता। इसका परिणाम कुछ अंशोंमें बड़ा वीभत्स भी हो गया है। आजकलके संसारमें सब रोजगारोंका समान पद नहीं है। कुछ रोजगार बड़े समझे जाने लगे हैं, उनकी मान-मर्यादा अधिक हो गयी है। वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण आज धनके द्वारा बहुत-सी चीजें खरीदी जा सकती हैं जो पहले नहीं मिल सकती थीं। धनी और दरिद्रके बाह्य जीवनमें बड़ा अन्तर पड़ गया है। हमें अब अपने जन्मके वर्ण सम्बन्धी रोजगारसे संतोष नहीं होता। अब हमारा विश्वास भी कर्म और पुनर्जन्मपर व्यवहार्य दृष्टिसे बहुत नहीं रह गया है। जन्मके कारण वर्ण तो हमारे पीछे लगा रहता है, पर हम सब उन रोजगारोंके पीछे दौड़ रहे हैं जो बड़े और ऊँचे समझे जाते हैं। इससे भयानक दुर्व्यवस्था फैल गयी है जिसे दूर करना कठिन हो गया है, और सब ही विचारवान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। हमारे लिये इस समस्याको हल करना नितान्त आवश्यक है।

(८)

जन्मना वर्णकी दुर्दशा

वर्ण भेदकी व्यवस्था तो इसी उद्देश्यसे की गयी थी कि समाजमें प्रतिद्वन्द्विताकी ककपता न आने पावे, सब व्यक्तियोंका रोजगार और पद जन्मसे ही निर्दिष्ट हो जाय, सबकी मर्यादा अपनी-अपनी जातिमें निर्धारित रहे, सब पेशोंकी महिमा समान मानी जाय, और संसारके सब उपयोगी कार्योंके लिये सदा पर्याप्त संख्यामें कार्यकर्ता मौजूद रहें। इस व्यवस्थामें भोजन और विवाहकी कोई कैद नहीं थी। इसमें केवल पेशेकी कैद थी। साधारणतः स्त्रियां विवाहकर अलगसे पेशा नहीं उठातीं। उनके पतिका ही पेशा उनका भी समझा जा सकता है क्योंकि उसीसे उनका भी जीवन निर्वाह होता है। यही कारण होगा कि मामूली तरहसे स्त्रियोंकी कोई जाति नहीं थी। उनके पुरुष कुटुम्बियोंकी ही जाति उनकी भी जाति थी — चाहे वे पिता हों, भाई हों, या पति हों। इसमें कोई अपमान नहीं है। यदि पुरुषके लिये विवाह करना अपमानजनक नहीं है तो स्त्रीके लिये भी नहीं है क्योंकि विवाह स्त्री पुरुष दोनोंका ही होता है और प्रत्येक विवाहमें दोनों ही होते हैं जैसा कि स्वभावतः ही अनिवार्य है। किसी जातिके पुरुषका विवाह किसी भी जाति अर्थात् किसी ही जातिके पुरुषकी कन्या या बहिनके साथ हो सकता था। भोजनमें भी कोई कैद नहीं रही। कोई भी किसीकी बनायी या छूई रोटी खा सकता था और चाहे जिसके साथ बैठकर भोजन कर सकता था। हमारे मनमें इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि विवाह और भोजनके सम्बन्धमें वर्णकी कोई भी कैद नहीं थी। यदि होती तो अवश्य ही पुरानी कथाओंमें इसकी चर्चा

रहती । दशरथके यज्ञके समयके बड़े भोजोंका भी जो वर्णन वाल्मीकि-की रामायणमें मिलता है उसमें वर्ण भेदका कोई संकेत नहीं है । भीम-सेनने अज्ञातवासमें विदुरके यहाँ रसोई बनानेका काम जब उठाया और जिसकी चर्चा महाभारतमें विस्तारसे है, उस समय उनका वर्ण नहीं पूछा गया था यद्यपि वे स्वयं पुकार-पुकार कर कह रहे थे कि मैं शूद्र हूँ, मैं शूद्र हूँ ।

स्वयंवरके समय भी अतिथियोंका वर्ण नहीं पूछा जाता था और द्रौपदीके विवाहके समय तो स्पष्ट ही है कि राजा द्रुपद चिन्तित ही रह गये कि मेरी कन्या न जाने कहाँ जा रही है । हमारे सब ही ऋषि मुनियों, राजों और अन्य वीर-पुरुषोंकी उत्पत्तिकी जो गाथाएँ हैं उनसे भी स्पष्ट है कि वैवाहिक सम्बन्धमें वर्णका प्रश्न नहीं ही उठता था । पर साथ ही इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि पेशा उठाते हुए, रोजगार करते हुए, कोई भी किसी दूसरेका काम नहीं छीन सकता था । उसे अपना ही पैतृक पेशा उठाना पड़ता था । यदि इसमें कोई हठ करता था, नियमके विरुद्ध जाता, तो उसे पर्याप्त दण्ड भी समाजकी तरफसे मिलता था । जैसे-जैसे भारतका भी समाज विकसित होता गया, नयी-नयी आवश्यकताओं-की पूर्तिके लिये नये-नये रोजगार निकलते गये, वैसे-वैसे अवान्तर वर्ण भी पैदा होते गये । इस प्रचारमें भी आर्थिक प्रतिद्वंद्वितासे परहेज किया गया, पुराने सिद्धान्तका ही पालन किया गया । विकास और परिवर्तन प्रकृतिका अपरिहार्य नियम है । कोई भी समाज अपरिवर्तनीय अवस्थामें सदा नहीं रह सकता । अवश्य ही भारतके समाजमें भी परिवर्तन होते रहे। पर पुराने निर्धारित सिद्धान्तको समाजने नहीं छोड़ा और नयी-नयी आव-श्यकताओंकी पूर्तिके लिये नये-नये पेशोंके साथ ही साथ उसके वर्ण अथवा

उपवर्ण भी तयार होते गये और समाजमें सबका नैसर्गिक रूपसे समावेश भी होता गया। इसको कुछ भी संदेह नहीं है कि जो लोग बाहरसे आकर भारत में बसने गये उन्होंने भी उस पेशेके वर्ण में अपना सन्निवेश करा लिया जिसे उन्होंने अपने उपयुक्त माना। इस कारण समाजके व्यूहन में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो सकी।

आज हम अपने देश में यह बीभत्स दृश्य देख रहे हैं कि जिन दो बातों में वर्णका विचार नहीं किया जाता था, अब उन्हींमें ही किया जाता है, और जिस बातमें वह किया जाता था और जिसके लिये ही उसकी स्थापना हुई थी, उसी बातमें अब नहीं किया जाता। भोजन और विवाहके संबधमें बड़ा बृहद् कर्मकाण्ड तयार हो गया है। कौन किसके साथ और किसकी बनाई क्या चीज खा सकता है, क्या नहीं खा सकता, इसका बडा भारी शास्त्र उत्पन्न हो गया है। कौन किससे विवाह कर सकता है—इसके भी बड़े कड़े नियम मौजूद हैं। पर जहां तक पेशेका संबंध है अब वर्णकी फिकर कोई भी नहीं करता, सब ही सब पेशेमें दौड़े जा रहे है। जिसीमें जिसीको अधिक लाभ देख पड़ता है, जिसमें हो जो अधिक मान समझता है, उसीमें वह चले जानेका प्रयत्न करता है। अपनी जन्मकी जातिका महत्त्व बढ़ानेके बहाने व्यक्ति विशेष उन पदों और देशोंको खोजने लगे हैं जिनकी उनकी समझमें आजके समाजमें अधिक मान-मर्यादा है। वे यह नहीं समझ रहे हैं कि एक व्यक्तिसे किसी विशेष जातिका गौरव नहीं बढ़ सकता, पर उस जातिके पेशेका महत्व जब समाज स्वीकार करता है तब ही उस जातिका वास्तविक गौरव बढ़ सकता है। प्रचलित भावोंका परिणाम यह हुआ कि वर्णव्यवस्थाकी बडी ही दुर्दशा हो गयी, उससे लाभ न होकर

हानि ही हानि होने लगी। सहभोज करनेका क्षेत्र सीमित हो जानेसे सामाजिक संबंध विस्तृत न होकर संकुचित हो गया, विवाहका क्षेत्र बहुत ही छोटा हो जानेके कारण समानशील व्यसनादिको देखनेकी भी गुंजाइश नहीं रह गयी और हमारे यहां अनुपयुक्त विवाह संबंधके कारण संततिका ह्रास होने लगा, कौटुम्बिक सुख लुप्तप्राय हो गया, हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियां दिन प्रतिदिन कम होने लगीं, और सबके एक ही पेशेमें दौड़े जानेके कारण आर्थिक प्रतिद्वंद्विताकी कर्कशता भयंकर रूप धारण करने लगी और जरूरी जरूरी व्यवसायों और रोजगारोंको छोटा मानकर उससे परहेज करनेके कारण सारे समाजकी भयंकर दुरवस्था होती जा रही है।

---

(९)

राजका संघटन

यूनानके पुरातन दार्शनिक अरस्तू कह गये हैं कि मनुष्य सामाजिक जन्तु है। वह अकेला नहीं रह सकता। वह दूसरोंका साथ खोजता है। जब बहुतसे लोग साथ आते हैं तो अवश्य ही उन्हें किन्हीं नियमोंके अनुसार रहना पड़ता है और साथके ही कारण बहुत सी समस्याएं उपस्थित हो जाती हैं जिन्हें हल करते रहना आवश्यक है। और भी जहां दस बरतन साथ रख दिये जाते हैं वहां वे खड़कते ही रहते हैं। दस आदमी जहां साथ होते हैं वहां कोई न कोई खट-पट बनी ही रहती है। इसी खट-पटको यथासंभव दूर करनेके लिये और यदि हो जाय तो उसकी मीमांसा कर उचित दण्डादि देनेकी व्यवस्था करनेके लिये मनुष्य

समाजने राजकी सृष्टि की है। राजकी रचना कैसे हुई, इसकी उत्पत्ति और विकासका क्या इतिहास है इसके संबंधमें विचारवानोंके बहुतसे अनुमान हैं। कोई कहता है कि शक्तिशाली पुरुषोंने अपनी आकर्षण शक्तिसे बहुतमें लोगोंका गरोह बनाकर अन्य बहुतसे लोगोंपर अपना अधिकार बाहुबलसे जमाया, अपने सहायकोंको अपने साथ राज्याधिकार दिया और दूसरोंको अपनी प्रजा बनाकर उनसे अपनी सेवा करायी और अपने बनाये हुए नियमोंमें उन्हें बाँधकर अपने अधीन रखा।

राजतंत्रके समर्थकोंका यही कहना है और राजाके अनन्याधिकारी बनाये जानेके पक्षमें उनकी यही दलील है। इसके विरोधी प्रजातंत्रवादके समर्थक यह कहते हैं कि सब जनसाधारणने मिलकर किसी समय यह समझौता किया था कि हम सब अपनी व्यक्तिगत पूर्ण स्वतंत्रताका कुछ कुछ अंश छोड़ दें और उसे अपनेमें से निर्वाचित राजाको दे दें जो शासन ताड़न द्वारा शान्तिकी रक्षा करे और समाजके समुचित विकास में सहायक हो। यदि राजा अपने कर्तव्योंका पालन ठीक तरह न करे तो हम उसे बदलनेका अधिकार रखते हैं। हम यहां पर राजकी स्थापनाके सम्बन्धके विविध विचारोंकी समीक्षा परीक्षा करने नहीं बैठे हैं। हम यह मान लेते हैं कि मनुष्य समाजकी जटिल समस्याओंको हल करनेके लिये और उसकी सब आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये राजकी आवश्यकता पड़ी और संभवतः यह आवश्यकता सदा रहेगी। भारतके पुरातन समाजने भी इसे अनुभव किया ही और नाना प्रकारके राज्य हमारे देशमें भी स्थापित हुए। इन राज्योंके आन्तरिक सिद्धान्तको भी हमें समझ ही लेना चाहिए क्योंकि कोई भी राज्य नहीं चल सकता यदि जनसाधारणकी आध्यात्मिक प्रकृतिके वह विरुद्ध हो। हम अपने

समाजकी विशेषता इसीमें पाते हैं कि उसमें वर्णका भेद है जिसके कारण सब पेशोंके लिये सदा लोग मौजूद हैं जो विविध रूपसे समाजके बोझका वहनकर समाजकी गति संभव करते हैं। इन सब लोगोंका प्रधान उद्देश्य यही है कि किसी प्रकारसे हम अपने व्यक्तिगत कर्तव्योंका पालनकर अपनी व्यक्तिगत आत्माको मोक्ष दिलवायें।

व्यक्ति-वादी समाजमें राजप्रबन्ध करना कठिन है, पर राजकी आवश्यकता होनेके कारण उसको भी बरदाश्त करना जरूरी होता है। साथ ही हमारी यह कामना सदा रही कि राज हमसे यथासंभव कम हस्तक्षेप करे, हमें यथासंभव कम उससे सम्बन्ध रखना हो, और हम अपने निर्धारित पेशेका पालन उसके परम्परागत नियमोंके अनुसार बिना किसी अड़चनके कर सकें, हमारे सामाजिक, वैवाहिक आदि कृत्योंमें किसी प्रकारकी बाधा न डाली जाय, और हम अपने विश्वासके अनुकूल अपने धार्मिक कर्तव्योंका भी पालन कर सकें और अपने ईश्वरकी उपासना अपने आराध्य देवोंकी पूजा भी बिना किसी तरहके विघ्नके कर सकें। आधुनिक राजप्रबन्धका तो मूल सिद्धान्त यह है कि राज प्रजाके हर बातमें हस्तक्षेप कर सकता है, अपने विचारोंके अनुसार उसके हित-अहित की व्यवस्था कर सकता है। प्रजाको उसके बनाये कायदोंको मानना ही पड़ेगा और न माननेपर दण्ड भोगना होगा। ऐसी स्थितिमें किसी राज्यका स्थायी रूपसे हमारे देशमें स्थापित होना कठिन ही है। एक तरफ राज यह चाहता है कि हमारी आज्ञाका पालन हर बातमें सब लोग करें, हमारी रक्षाके लिए सब लोग सदा प्राणपणसे तैयार रहें, दूसरी तरफ प्रजागण धर्म-कर्म यह चाहते हैं कि हमसे किसी भी बातमें किसी तरहका हस्तक्षेप न किया जाय। जब राजका मूल सिद्धान्त और प्रजाके जीवनके मूल सिद्धान्तोंमें इतना

विरोध है तो कोई आश्चर्य नहीं कि भारतमें सच्चा राज अर्थात् उस अर्थमें राज्य जिस अर्थमें वह आज समझा जाता है, शायद कभी भी संभव नहीं हुआ। हमारा इतिहास भी यह बतलाता है कि बड़ेसे बड़े बलशाली राज भी हमारे यहाँ १५० या २०० वर्षोंसे अधिक नहीं ठहर सके और हम अपने अपरिवर्तनीय समाजपर एक राजके बाद दूसरा राज लगातार स्थापित करते रहे।

(१०)

हमारे राजकी विशेषता

मनुष्यके आदर्शों और अभिलाषाओंसे अधिक बलवती मनुष्यकी प्रकृति है। पुरातन शास्त्रकारने कहा भी है — 'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति', तुम्हारी प्रकृति तुम्हें विवश कर ढकेल रही है, उसीके वशमें होकर तुम सब काम कर रहे हो। मनुष्यकी प्रकृतिके वेग और स्वच्छन्दताको रोकनेके ही लिये मनुष्यने "आदर्शोंका प्रतिपादन किया और बहुतसे नियमादि बनाये। अपने साधनोंका दुरुपयोगकर अपने महत्वको बढ़ाना — यह संभवतः मनुष्यकी प्रकृतिका बहुत ही बड़ा अंग है। इसीको शिष्ट भाषामें आकांक्षा भी कह सकते हैं। इसकी पूर्तिमें सफलता न होनेसे दूसरोंपर क्रोध आता है जिन्हें हम अपने मार्गमें बाधक समझते हैं। यदि दूसरा अपने उद्योगमें सफल होता है और हम नहीं होते तो हमें ईर्ष्या होती है जो मनुष्यकी प्रकृतिमें अपरिहार्य रूपसे मौजूद रहती है, जो मनुष्यके जीवन और इतिहासमें सबसे प्रधान भाग लेती है, जो मनुष्यको न जाने कहाँ-कहाँ ढकेलती फिरती है। कर्म और पुनर्जन्मके मूल सिद्धान्तोंपर स्थापित

वर्ण और आश्रमकी व्यवस्था इसी उद्देश्यसे अवश्यही की गयी कि कोई भी अपने पदका दुरुपयोग न कर सके और व्यर्थकी ईर्ष्या मनुष्यके जीवनको कलुषित न करे। संसारके जितने ही लिखित या अलिखित नियमादि बने हैं, कानून आदिका जो प्रबन्ध किया गया है, उस सबका भी यही उद्देश्य है। पर इन सबके परे मनुष्यकी प्रकृति है और सब नियमों, सत्कामनाओं और आदर्शोंको हम इसी रूपमें पाते हैं मानों उन्हें किसी एक व्यक्तिने दूसरे व्यक्तियोंके लिये निर्धारित किया हो। निर्धारक ही उन्हें स्वयं अपने जीवनमें कार्यान्वित नहीं कर पाते, वे 'परोपदेशे पांडित्यं' का रूप रखते ही देख पड़ते हैं। जिन्हें हम इनके अनुकूल चलते पाते हैं उनके आन्तरिक भावोंकी यदि वास्तविक परीक्षा की जाय तो संभवतः यह पता लगेगा कि अशक्त, असहाय, निराश होनेके कारण ही वे बाहरसे इनका प्रतिपालन कर रहे हैं, पर उनके मनमें असत्कामनाएँ बनी ही हुई हैं और वे भीतर ही भीतर ईर्ष्याके शिकार हो रहे हैं।

हमारी व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवस्थामें भी मनुष्यकी साधारण प्रकृतिने अपना खेल खेला ही। वास्तवमें उसमें अपनी स्थितिके निर्धारित क्षेत्रके भीतर, उन्नति करनेकी कोई मनाही भी नहीं थी। उदाहरणार्थ ब्राह्मणोंका कर्तव्य पढ़ना पढ़ाना, विद्याका संचय करना और उसका प्रचार करना था। अवश्य ही विशेष प्रतिभाशाली ब्राह्मणोंने नयी नयी विद्याएँ निकालीं, नये नये शास्त्रोंकी रचना की, विशेष यश प्राप्त किया। इतनेसे ही संतुष्ट न होकर कुछने अपनी विद्याका दुरुपयोगकर राज-दरबारमें प्रवेश कर अपनेको अनुचित रूपसे शक्तिशाली और समृद्ध बनानेका सफल प्रयत्न भी किया। अपने प्रधान धर्मसे वे इस प्रकार च्युत अवश्य

हुए पर अपनी साधारण मानुषिक प्रकृतिके अनुकूल ही उनकी कार्रवाई हुई। इसी प्रकार प्रतिभाशाली वैश्यविशेषका भी उदाहरण दिया जा सकता है जो अपने वाणिज्य, व्यापार, व्यवसायसे प्रचुर धन लाभकर अपने साधनोंका दुरुपयोगकर ऐसे क्षेत्रोंमें महत्व पानेकी खोजमें चले जो साधारणतः उनके लिये बंद समझना चाहिए। पर जब कोई क्षत्रिय अर्थात् राज्याधिकारी अपने कर्तव्योंके पालनसे विमुख होकर स्वार्थवश अपनी नैसर्गिक शक्तिका दुरुपयोग करता है, दूसरोंकी रक्षा न कर उनका दमन आरंभ करता है, दीन, दुःखी, या दरिद्र व्यक्तियोंका पालन न कर उन्हें दास बनाकर उनसे जबरदस्ती अपनी सेवा कराता है तो अवश्य ही एक ऐसी दुःखमय अवस्था पैदा हो जाती है कि मनुष्यके सब सुख स्वप्न भंग हो जाते हैं और उसे संसारकी करुण वास्तविकताका सामना करना पड़ता है।..

भारतमें राजोंकी यही विशेषता रही है। छोटे छोटे क्षत्रिय अधिकारीगण अवसर पाकर और अपनेको शक्तिशाली देखकर अपने शासनाधिकारका दायरा बढ़ाते रहे। जो प्रदेश उनके हाथमें आता था, वह उनकी जैसे निजी मिलकियत हो जाती थी। वहाँके प्रजाजनकी वह रक्षाकी फिकर नहीं करते थे, उनको अधीन मानते थे और उनसे अपनी सेवा कराने और उनसे कर लेनेका अपनेको अधिकारी जानते थे। जो राज्य स्थापित होता था वह विजयी पुरुषकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होती थी। शासनमें अवश्य ही वह दूसरोंको सम्मिलित करते थे जो उनके नौकर होते थे। ये राजकर्मचारी प्रजाके प्रति जिम्मेदार नहीं थे, अपने स्वामीके ही प्रति जिम्मेदार थे। जो कोई शक्तिशाली होता है, अर्थात् जो कोई भी किसी बातमें विशेषता रखता है उसके चारो ओर कितने ही कारणोंसे आकर्षित होकर अन्य लोग जुट जाते हैं। विजयी राजशक्ति रखनेवालेकी

तो बात ही क्या कहना है। सारांश यह कि एक तरफ अवश्य हमारे पुराने आदर्श और उनपर स्थित हमारी वर्णव्यवस्था काम कर रही थी, दूसरी तरफ व्यक्तिविशेषोंकी आकांक्षा उसको मर्यादाको तोड़ती जाती थी और यद्यपि जनसाधारण अपनी शक्ति और बुद्धि भर पुरानी व्यवस्थाको निबाहते थे, पर स्थितिकी प्रतिकूलताके कारण वह टूटती जाती थी। चारों तरफ छोटे छोटे राज्य कायम होते थे और लुप्त होते थे। उनका आधार व्यक्तिगतशक्ति होनेके कारण उनकी कोई परम्परा नहीं थी। वे समुद्रकी तरंगोंकी तरह प्रकट और लुप्त होते थे। यदि भारतके वास्तविक जीवनपर उनका बहुत कम प्रभाव पड़ता था तो इसका कारण यही था कि यह जीवन अपनेको राजसे अलग रखता था, राज इसमें हस्तक्षेप नहीं करता था, अपने करसे संतुष्ट था और उसके प्रधानपुरुष भी इसी प्रकारकी समाज व्यवस्थाके समर्थक थे, जो कुछ सहायता दे सकते थे उसके पक्षमें ही देते थे और उसमें अपनेको सन्निविष्ट करनेका प्रयत्न करते थे।

---

(११)

वर्ण विभाग और अस्थायी राज

हमारे यहाँ साधारणतः यही विचार रहा है कि राजाका काम राज करना है। उसके प्रति प्रजाका कर्तव्य उचित कर देकर समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि प्रजाजन अपने सामाजिक अथवा आध्यात्मिक जीवनमें राजाका हस्तक्षेप स्वीकार करनेको कदापि नहीं तैयार रहे हैं। वे अपने अपने कर्तव्योंको जानते थे, उनका पूरा करना अपना धर्म

समझते थे। 'राजाका काम राज करनेका है' — इसका अर्थ इतना ही था कि राजा देखता रहे कि कोई किसीके काममें बाधा नहीं डालता, कोई किसीका अधिकार नहीं छीनता। यदि कोई ऐसा करे तो राजाका कर्तव्य था कि उसे समुचित दण्ड दे और इस कामको कर सकनेके लिये प्रजा उसे सहर्ष कर देती है। वर्ण व्यवस्थाकी भाषामें राजा क्षत्रिय था और समाजके क्षत्रियजन एक प्रकार से नैसर्गिक राजपुरुष थे जो सैनिक, पुलीस, प्रबन्धक, मन्त्री आदिके रूपमें राजाके सहायक थे और जिन्हें इनके कामके लिये राजकी तरफ से उपयुक्त पुरस्कार मिलता था और राज उन्हें पर्याप्त अधिकार भी देता था जिससे वे अपना काम ठीक प्रकार कर सकें। अभ्यन्तर शान्तिके अथवा अपना राज स्थापित रखने की क्षमताके सम्बन्धमें यदि क्षत्रियोंमें कुछ त्रुटि हो तो अपयश उनका था, प्रजाका इसमें कोई सरोकार नहीं था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्तमोत्तम समाजमें, सर्वथा सुव्यवस्थित जनसमूहमें भी कुछ लोग प्रकृत्या ऐसे अवश्य होंगे जो प्रचलित प्रणालियों से असन्तुष्ट होंगे और उसे ध्वंस करनेके प्रयत्नमें लगे रहेंगे। ऐसे लोगोंको चाहे वे अच्छे उद्देश्यों से प्रभावित हों या बुरे — अधिकतर स्त्री पुरुष आततायी ही मानेंगे और उनका दमन चाहेंगे। छोटे मोटे विरोधियोंका तो वे स्वयं व्यक्तिगत रूपसे सामना कर लेंगे, पर विशेष प्रकारसे बलवान लोगोंसे वे अपनी रक्षाके लिये राजसे सहायता चाहेंगे।

मान लिया जाय कि वर्ण और आश्रमके सिद्धान्तोंपर कोई जनसमूह चल रहा है। इसमें कुछ ऐसे लोग निकले जो ब्राह्मणोंके अध्ययन अध्यापनमें, वैश्योंके व्यापार वाणिज्यमें, हस्तक्षेप करने लगे — यज्ञादिकों स्पर्धासे आडम्बर समझ उनका ध्वंस करने लगे, या व्यापारियोंको

व्यर्थका प्रचुर धन एकत्र करते हुए देखकर उनको लूटने लगे। यह भी संभव था कि किसी क्षत्रियसे ही द्वेषकर किसी दूसरे क्षत्रियने उसकी हत्या कर डाली, या क्षुद्रोंको निर्बल देखकर उन्हें किसीने सताना आरंभ किया। ऐसे अनाचारों से समाज की रक्षा करनेके लिये किसी बलवती शक्ति की आवश्यकता होगी ही। यह किसी न किसी रुपमें राजशक्ति ही हो सकती है। या तो गाँवमें बसनेवाले लोग किसी पासमें बसे हुये विशेष बलवान प्रतिभाशाली पुरुषके शरण जायँगे और उसे अपनी रक्षाके लिये आमंत्रित करेंगे, या लोगोंकी असहाय अवस्था देखकर सुअवसर पाकर कोई व्यक्ति अपने बाहुबल से इनके ऊपर राज करने लगेगा। व्यक्तियोंके राजका क्षेत्र छोटा होगा या बड़ा यह उसकी व्यक्तिगत शक्तिपर ही निर्भर करेगा। भारतने बड़े बड़े राज भी देखे हैं जो समस्त भारत-भूमिको एक छत्रके नीचे रखे हुए थे और छोटे छोटे राजोंका भी अनुभव किया है जो चन्द कोस भूमि से अधिक अपने अधिकारमें नहीं रखते थे। पर सबकी विशेषता यह थी कि कोई भी स्थायी रुपसे बहुत दिन नहीं रहने पाते थे, सबकी सीमाएँ बराबर न्यूनाधिक होती रहती थी, सबको सदा आक्रमणका भय लगा रहता था, और प्रजाजन उनके भाग्यके सम्बन्धमें सर्वथा उदासीन रहते थे।

राजका प्रधान काम अपना प्रभुत्व बनाये रहना, प्रजाजनसे कर लेना, चौरादि आततायियोंसे प्रजाजन की रक्षाकर अभ्यन्तर शान्ति स्थापित किये रहना और यथासंभव समाजको अपनी निश्चित रुढ़ि एवं परम्पराके अनुसार चलते रहनेमें सहायक होना था। प्रजाजनको इसकी फिकर नहीं थी कि कौन राजा है, उसने समझ रखा था कि हमें तो जो राजा होगा उसीको कर देना होगा। अपनी रक्षाकी अधिकतर

फिकर हमें स्वयं ही करनी होगी, पर यदि राज से सहायता मिल जाय तो अच्छा ही है, न मिले तो कोई शिकायतका मौका न होगा। प्रजा-जनका यह भी अटल विश्वास था कि यदि राजा उचित से अधिक कर ले तो उसका विरोध करनेका उन्हें अधिकार है और यदि किसी भी प्रकार से राज की तरफसे समाजव्यवस्थामें कोई हस्तक्षेप किया जाय, धार्मिक कृत्योंमें कोई बाधा पहुँचायी जाय, तो उसके विरुद्ध विद्रोहतक करनेका उनका अधिकार ही नहीं, कर्तव्य भी है। सारांश यह कि किसी न किसी प्रकारका राजप्रबंध तो देशमें सदा रहा, यह प्रबंध छोटे या बड़े क्षेत्रमें देख पड़ता रहा, राजा हो या सम्राट् हो या सरदार ही क्यों न हो, उसका अधिकार व्यक्तिगत ही था, प्राजाजनसे उसका प्रत्यक्ष संबंध बहुत कम था, राजमें प्रजा किसी प्रकारसे भाग लेनेकी कोई भी उत्सुकता नहीं रखती थी, राजा शान्तिरक्षाके अतिरिक्त और अपना कोई कर्तव्य प्रजाकी तरफ साधारणतः नहीं समझता था, जनसाधारणके आर्थिक अथवा सामाजिक जीवनमें राजकी तरफसे कोई हस्तक्षेप नहीं होता था और न इसे प्रजा बरदाश्त करनेको ही तयार थी। इस समाजमें जो सार्वजनिक सेवा भी होती थी यह व्यक्तिगत रूपसे ही होती थी। राजाकी मान-मर्यादा अवश्य बहुत होती थी, पर उसके शासनका क्षेत्र बहुत ही सीमित था। भारतीय समाज अपने दिन प्रतिदिनका कार्य सम्हालता हुआ एवं भारतीय स्त्री पुरुष अपने कौटुम्बिक कृत्योंका पालन और अपनी आर्थिक आवश्यकताओं और आध्यात्मिक आकांक्षाओंकी पूर्ति करते हुए संसार यात्रा करते चले जा रहे थे।

---

(१२)

विदेशियों द्वारा राजकी स्थापना

हमारा ख्याल है कि करीब तीन हजार वर्षों तक भारत देश अपने पुराने आदर्शोंके अनुसार येन केन प्रकारेण चला गया। इस बीचमें देशमें बहुत सी विभूतियां पैदा हुईं जिन्होंने देशका यश संसारमें अजर अमर किया। हमारे यहां बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गये, बड़े-बड़े राज्योंका संगठन हुआ, बड़े-बड़े भवन बनाये गये, और ग्रामादिका जीवन सुचारुरूपसे चलता गया। यह समझा जाता है कि सभ्यता नगरोंपर निर्भर करती है। वहीं वह पैदा होती है, वहीं वह पनपती है। सभ्यताकी परिभाषा भी यही की गयी है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओंको बढ़ावे और अपनी बुद्धि और शक्ति लगाकर उनकी पूर्तिकी चेष्टा करे। गावोंके संकुचित क्षेत्रमें न बहुत सी आवश्यकता हो सकती है, न उनकी पूर्तिका विशेष प्रबंध ही किया जा सकता है। नगरोंके ही जटिल जीवनमें वे समस्याएं पैदा होती हैं जो सभ्यताकी तरफ —उन्नति, परिवर्तन, जो चाहिए उसे पुकारिए— मनुष्यको प्रोत्साहित करती हैं। हमारे देशमें जगह-जगह लगातार बड़े-बड़े नगर बसते रहे जो बड़ी ख्याति पाते रहे और मनुष्यके जीवन की शोभा बढ़ाते रहे। कोई नगर बहुत दिनों तक कायम नहीं रहा, राजाओंकी राजधानियां भी बदलती रहीं, पर इसमें संदेह नहीं कि बड़े बड़े शहर हमारे यहां काफी संख्यामें रहे और यहांपर नागरिक जीवनकी समस्याओंको भी हल करनेका सफल प्रयत्न हुआ। नगरमें थोड़ी ही जगहमें बहुतसे लोग एकत्र हो जाते हैं, इसी कारण वहांकी समस्यायें गांवोंसे अधिक दुष्कर होती हैं, जहाँ बहुत विस्तृत स्थानोंमें थोड़ेसे

ही आदमी रहते हैं, और जहा परस्पर स्वतंत्र होकर मनुष्य जीवन व्यतीत कर सकता है। ऐसा नगरोंमें संभव नहीं है। राजका केंद्र कोई बड़ा नगर ही होता है और उसके जीते जानेपर राजही विजित समझा जाता है। हमारे देशमें भी भिन्न भिन्न राजके साथ साथ भिन्न भिन्न नगर स्थापित हुए, नगरके विस्तार और उसकी समृद्धिमें राजविशेषकी प्रतिभा मानी गयी, उसकी अवनति और नाशके साथ ही राजविशेषकी भी अवनति और नाश हुआ।

इन तीन सहस्रोंके भारतीय इतिहासने देशमें परस्पर विरोधी राजाओं और अपने शरीर और आत्माके अतिरिक्त सब कामोंके प्रति उदासीन रजाजनको पैदा किया। साथ ही कालकी गतिसे अवश्य ही आध्यात्मिक रूपमें एक बड़ी बलवती और विस्तृत परम्परा भी कायम हुई जो सबके ही आन्तरिक भावोंको आकर्षित करती थी और जिसके कारण देशकी हार्दिक एकता और समता भी एक प्रकारसे स्थापित होती गयी। सामूहिक दृष्टिसे देश पर्याप्त रूपसे धन धान्यसे पूर्ण रहा, लोग शान्तिप्रिय और संतुष्ट थे, कृषिके साथ साथ व्यापार, वाणिज्यादिकी भी उन्नति होती रही और उस समयके संसारमें इसका पर्याप्त सुयश भी रहा। जैसी स्थिति थी उसमें यदि बाहरके लोग इसके प्रति लोभकी दृष्टि डालें, यहाके राजबंधनकी शिथिलता और जनसाधारणकी शान्तिप्रियताका यदि वे अनुचित लाभ लेना चाहे तो कोई आश्चर्य नहीं। अवश्य ही संसारके अन्य भागोंमें भिन्न भिन्न जन-समूह अपना-अपना संघटन आत्मरक्षाके अर्थ अथवा दूसरोंको अपने अधीन करनेके लिये, भिन्न-भिन्न प्रकारसे कर रहे थे। भारतका धन-धान्य उन्हें आकर्षित करने लगा और जहाँ पहले केवल व्यापार वाणिज्यके लिये विदेशियोंका यहाँ आगमन होर [illegible] नको अपने

अधीन करनेके अर्थ वे अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर आनेके लिये उद्यत हुए।

हमारे देशके इतिहासमें बहुतसी जातियोंका हमारे यहाँ आक्रमण हुआ है। अधिकतर तो केवल लूटनेके लिये आयीं। वे यहाँका धन लेकर अपने देश वापस चली गयीं। जो बाहरके लोग भारतमें रह गये, किसी कारण वापस नहीं गये या नहीं जा सके, वे यहाँके समाजके अङ्ग हो गये। पर करीब एक हजार वर्ष हुए इस्लाम धर्मके अद्भुत प्रभावमें आकर बहुतसी मुस्लिम जातियोंका संगठन हुआ और एकके बाद एक इनका आक्रमण भारतपर होने लगा। ये काफी संख्यामें आती थीं, इनके सरदारगण तो धन-धान्य लेकर वापस चले जाते थे पर उनके बहुतसे अनुयायी इसी देशमें रह जाते थे। धीरे-धीरे सरदार लोग भी यहीं बसने लगे और अपनी शक्तिके अनुकूल पुराने राज्य प्रबन्धोंकी तरह छोटे या बड़े राज यहाँपर कायम करने लगे। इन्होंने अपना प्रधान स्थान पुरातन राजकेंद्र दिल्लीके आसपास ही बनाया और यद्यपि एक मुस्लिम जातिको जीतकर दूसरी मुस्लिम जाति भारतमें राज स्थापित करती गयी पर सबके नेतागणने दिल्लीको ही अपनी राजधानी माना और वहाँसे अपना सब संघटन किया। ये अपने राजके विस्तारका सतत प्रयत्न भी करते रहे। इन्होंने राजके बहुतसे ऐसे तरीकोंको कायम किया जो इस समय भी विद्यमान हैं। इनके द्वारा देशमें नये लोग, नयी विचारधारा, नया मजहब, नयी भाषा आदिका आगमन हुआ। इनका भारतके समाजमें समावेश हुआ अवश्य, पर इनका व्यक्तित्व अलगसे भी बना रहा और देशमें एक विशेष प्रकारकी सामाजिक और आध्यात्मिक स्थिति पैदा हुई जिसे समझना अत्या-

वश्यक है यदि हम उसके बादका अपने देशका इतिहास और आजकी जटिल समस्याओंको समझना चाहते हैं।

(१३)

भारतमें इस्लाम

हम इस बातको माननेके लिये बाध्य हैं कि हमारी विचारधारा—दार्शनिक और राजनीतिक—और हमारा कौटुम्बिक एवं सामाजिक जीवन सब हमें व्यक्तिवादकी ही तरफ प्रवृत्त करता रहा। इस कारण हममें वह भावना कभी भी जाग्रत नहीं हुई जिसे हम इस युगमें देशभक्तिके नामसे जानते हैं। अपनी मर्यादाके लिये, कुटुम्बकी रक्षाके लिये, कुलके और वंशके गौरवके लिये, सम्प्रदायविशेषोंकी उन्नतिके लिये हमने बड़ा-बड़ा त्याग किया है, बड़ी वीरता भी प्रदर्शित की है, पर देशके लिये, देशके नामपर हमने शायद ही कभी कुछ किया हो। यह एक अद्भुत् बात है पर संभवतः इसकी सत्यतामें कोई शंका नहीं है। हम इसे लज्जाकी बात नहीं मानते क्योंकि हमारा इतिहास स्पष्ट रूपसे दर्शाता है कि वीरता, आत्मत्याग, सहिष्णुता आदिकी कमी हममें नहीं रही है और जिसे हमने ठीक जाना उसके लिये जान हमने सहर्ष दे दी। पर देशका पृथक व्यक्तित्व हमारे मनमें पूर्वकालमें नहीं रहा, इस कारण उस अस्पृश्य, अदृश्य भावना अथवा कल्पनाके लिए जिसे देश कहते हैं, जो एक प्रकारसे देशवासियोंसे पृथक समझा जा सकता है, जिसकी परिभाषा करना कठिन है पर जिसे हम आज बिना आयासके समझ लेते हैं, हमें त्याग करनेकी चिन्ता कभी नहीं रही। इस कारण जिस अर्थमें हम इस समय स्वराज

शब्दका प्रयोग कर रहे हैं उस अर्थमें पुराना होते हुए भी यह पहले कभी प्रयुक्त नहीं हुआ था। व्यक्तिगत दृष्टिसे ही सब स्थितियोंको देख सकनेके कारण यह साधारण बात थी कि युद्धादिके समय जो जिस स्वामीको किसी भी कारण अधिक पसन्द करता था वह उसकी तरफ सम्मिलित हो जाता था और स्वामिभक्तिका प्रदर्शन अपनी जान तक देकर करता था।

यह दिलचस्प बात है कि मुगल सम्राट् बाबर अपने गृहकलहमें सफलता प्राप्त करनेके लिये अपनी सेनामें सैनिकों-को भरती करनेके अर्थ भारतमें आया था, पर जब उसने यहाँ-पर यह स्थिति देखी की हम सरलताके साथ यहीं बड़ा राज्य कायम कर सकते हैं तो वह फिर वापस अपने घर नहीं गया और यहीं रह गया। यह तो सन् १५२६ की बात थी पर उसके पहलेसे मुसलमान हमारे देशमें बाहरसे आ रहे थे। अरब लोग आठवीं शताब्दीके शुरूमें सिंधमें आये थे और महमूद गजनीने दसवीं सदीके अन्ततक धावा मारना शुरू कर दिया था। तबसे लगातार भिन्न भिन्न जातियोंके मुसलमान भारतमें आकर बसने लगे और राज्य कायम करने लगे। अकबर बादशाहका तो बड़ा ही नाम है। पर इनका समय अपने राज्यको संघटित करने और चतुर्मुख युद्ध करनेमें ही बीता। १७ वीं शताब्दीमें मुगलके पौत्र शाहजहाँके शासनकालमें संभवतः मुस्लिम राज्य अधिकतम विस्तृत हो भारतमें फैला और उसी समय उनके राज्यका सर्वोत्तम शासन प्रबन्ध हुआ और उनकी कला-कौशलका भी प्रदर्शन हुआ। इस समयतक भारतीय समाजमें मुस्लिम लोगोंका समावेश पूर्णरूपसे हो गया था, कितने ही हिन्दू मुसलमान हो चुके थे और भारतमें बसे मुस्लिमोंका भी भारत उतना ही देश हो गया जितना की पुरातन वासियोंका जो हिन्दू कहलाते थे। सब देशोंमें, सब ओहदोंपर जैसे हिन्दू

पाये जाते थे वैसे ही मुस्लिम। देशमें हिन्दुओंकी सहस्रों जातियों अथवा वर्णों उपवर्णोंकी तरह मुसलमानोंका भी पेशेके अनुसार, अथवा धर्म परिवर्तनके पहलेके उनके हिन्दू-वर्णके अनुकूल बहुतसे वर्गोंमें विभक्त हुए माना जाने लगा।

इन शताब्दियोंमें कोई भी सम्राट् सुखकी नींद नहीं सो सकता था। वह शान्ति स्थापनाका प्रबन्ध अपने राज्यमें करनेका लगातार प्रयत्न करता था, अपनी सीमाके परेके देश अपने राज्यमें अन्तर्गत करनेका भी प्रबन्ध करता ही था, पर देशमें उसके विरोधी सदा मौजूद थे। कभी तो शेरशाहकी तरह पहलेके बसे मुस्लिम राष्ट्रोंके उत्तराधिकारी बाहरसे नये आये मुसलिम आक्रमणकारियोंका विरोधकर विद्रोह करते थे, कभी सूर्य और चन्द्रसे उत्पन्न हुए अपनेको माननेवाले राणा प्रताप ऐसे राजपूत राजा अपने वंश, अथवा महाराष्ट्र सरदार शिवाजी अपने धर्मके नामपर इनसे युद्ध करते थे। कभी अपने बीच नयी जाति, नये मजहब, नये आचार विचारको देख प्रजाजनमें विद्रोहका भाव उत्पन्न होता था जिसका प्रदर्शन अपने धार्मिक कृत्योंमें बाधा होनेके समय सशस्त्र विरोधके रूपमें, अपने धर्म स्थानोंका अपमान देखकर असंतोषके रूपमें, अथवा अपनेको विवश और असहाय पाकर परोक्ष असहयोगके विभिन्न प्रकारोंमें होता था। इसीका निरूपण सूर तुलसी आदि भक्तजनोंके चरित्रों, गीतों और ग्रंथोंमें पाया जाता है। जो कुछ हो, जनसाधारणमें हिन्दू और मुस्लिमका मिश्रण जोरोंसे होने लगा, एक दूसरे पर एक दूसरेका प्रभाव नाना रूपसे पड़ने लगा, एक दूसरेके आचार-विचार, शास्त्र और साहित्य एक दूसरेको प्रभावित करने लगे और भारतीय समाज एक विशेष रूपमें विकसित होने लगा।

---

(१४)

इस्लामकी विशेषता

अरब देशमें सातवीं शताब्दीमें पैगम्बर महम्मद साहबने इस्लाम धर्मका प्रवर्तन किया था। वहाँके लोगोंमें इसके कारण विशेष प्रकारकी जाग्रति आयी और उन्होंने चमत्कार कर दिखलाया। पैगम्बरकी मृत्युके सौ वर्षके भीतर ही अरब लोगोंके मजहबका झण्डा पश्चिममें स्पेन देशतक और पूर्वमें भारत देशतक — पिरनीज पर्वतसे सिन्धु नदीतक — फहराने लगा। इनके सुन्दर भवन चारों तरफ बनने लगे। इनकी विद्याके केन्द्र भी कितनी ही जगह स्थापित हुए और कितने ही देशोंमें ये ही शताब्दियोंतक अविद्या और अज्ञानके अन्धकारमें सभ्यता, शिष्टता, विद्या, ज्ञान आदिकी ज्योति जाले हुए थे। इनके नये मजहबका प्रबल प्रताप इतना बढ़ा कि पूर्व और पश्चिममें वृहत् भूखण्डोंके निवासी सबके सब मुसलिम हो गये और जो नहीं होना चाहते थे जैसे फारस अथवा ईरानके पारसी लोग, उन्हें अपने सब नरनारियोंको लेकर भारत ऐसे देशमें शरण लेनी पड़ी। आज भी मुस्लिम धर्म इतना बलशाली, प्रतापवान्, आकर्षक है कि इसकी विशेषता जान लेना अच्छा होगा। हमारा यह उद्देश्य यहाँपर नहीं है कि हम उसके धर्म ग्रंथोंकी विवेचनाकर उसके मूल सिद्धान्त बतलायें। हम यही चाहते हैं कि बाह्य रूपसे इसका प्रभाव जो जनसाधारणपर पड़ा या उन पर पड़ता है, जो इस मजहबको स्वीकार करते हैं उन्हें समझ लें।

सबसे पहले तो हमें यह मालूम पड़ता है कि यह मजहब बड़ा ही सरल है। इसे समझना कुछ भी कठिन नहीं है। यह एक खुदाको (खुदाको) मानना है और उसके प्रतिनिधिरूप उसकी इच्छाओंको

प्रचलित करने वाले एक पैगम्बरको (मुहम्मद साहबको) मानता है। इसका कर्मकाण्ड भी बहुत ही सरल है। जगत्के स्रष्टाकी उपासना प्रतिदिन पांच बार करनी (नमाज पढ़ना) चाहिए, प्रत्येक वर्षमें एक मास (रमजानमें) आधा उपवास करना (रोजा रखना) चाहिए, अपनी आयमेंसे कुछ निर्धारित अंश अपने भाइयोंकी सहायताके लिये (जकातमें) व्यय करना चाहिए, जीवनमें एक बार अपने मजहबके केंद्र धर्मस्थानोंका भ्रमण (हज) करना चाहिए और अपने धर्मकी रक्षा और उसके प्रसारके लिये धर्मयुद्ध (जेहाद) करनेके लिये सदा उद्यत रहना चाहिए। इन विचारों में कोई जटिलता अथवा गुत्थियां नहीं हैं। दार्शनिक प्रमाणों और नैयायिक दलीलोंसे मनुष्यके सरल चित्तको इसमें कष्ट नहीं दिया गया है। इस मजहबकी नैतिक आज्ञाएं भी मनुष्यकी साधारणसे साधारण प्रकृतिके अनुकूल हैं। मानुषिक कमजोरियोंके लिये इसमें कोई भयंकर दण्ड नहीं है। बहुत कुछ माफ है और सब अनुयायियोंके लिये मरणोपरान्त अनन्त सुख की (बिहिश्तकी) प्रतिज्ञा है। इसके सब अनुयायी परस्पर भाई हैं और बराबरका पद और हक रखते हैं। इनमें कोई ऊंचा नीचा नहीं है, सब एक साथ खा सकते हैं, सबका विवाह सब जगह हो सकता है, सब बराबरकी पाँतमें खड़े होकर निमाज पढते हैं, सब व्यक्ति प्रायः हर एक बातमें सदा एक दूसरेका साथ देते हैं। थोड़ेमें यह एक सुन्दर सरल धर्म है जो अपने अनुयायियोंको बराबरीका पद देकर, मनुष्य मनुष्यमें कोई भेद न बताकर, सबको एक जबरदस्त बंधनमें बांधे हुए है। सबके लिये एक ही उपासना बतलाई गई है। सबके लिये एक ही कर्मकाण्ड है। सब एक ही उद्देश्य और आदर्शसे संग्रथित हैं। इस मजहबमें आने से छोटेसे छोटे आदमीका पद बड़ेसे बड़े आदमीके बराबर हो जाता है, अन्य

मजहबोंके दबे लोग भी इसमें जाकर अपनेको उन्नत अवस्थामें यकायक पाने लगते हैं और जिन्हें दूसरे मजहब दोषी अपराधी नीच कुत्सित भी मानते हैं उन्हें यह मजहब माफ कर आगेके लिये आशा देता है और इस लोकमें भी उपयुक्त स्थान प्रदान करता है।

अवश्य ही ऐसा मजहब साधारण प्रकारसे आकर्षक होता है। दीन दुःखियोंको, अपनी जातिसे च्युत या किसी भी प्रकारसे त्रस्त लोग तो इसमें बड़ी प्रसन्नतासे जायँगे। कोई आश्चर्य नहीं कि वर्णोंमें विभाजित, जटिल कर्मकाण्डोंसे बंधे, कठोर नैतिक आचरणोंको बतलाने वाले हिन्दू धर्मके नामसे प्रचलित समाज व्यवस्था और विचार शैलीसे बहुतसे लोग व्यग्र हो उठे हों। कोई आश्चर्य नहीं कि अपनी लौकिक अवस्थाको सुधारनेके लिये और साथ ही पारलौकिक सुखको पानेके लिये बहुतसे लोग इस ओर आकर्षित हुए हों। फिर राजा ऐसा प्रभाव अपने पदके ही कारण रखता है कि उसकी नकल करना स्वाभाविक है। अगर दीन और दुःखी लोग इस्लामकी लोकतंत्रता और भ्रातृभावसे आकर्षित हुए तो कितने ही सम्पन्न लोग भी इसकी तरफ राजाका धर्म होनेके कारण आकर्षित हुए। मुसलिम लोग स्त्रियोंको अपने साथ नहीं लाये थे, इस कारण वैवाहिक संबंध उन्हें यहीं करने पड़े। अवश्य ही जाति जातिके संघर्षमें बहुतसे अनाचार भी होते ही हैं, पर केवल अनाचारसे कोई जाति अपने-को फैला नहीं सकती। उसके गुण ही दूसरोंको मोहित करते हैं और इन्हींके कारण किसीका भी प्रचार संसारमें हो सकता है। दूसरे देशोंसे बहुत थोड़ेसे मुस्लिम मजहबके लोग इस देशमें आये। वे यहां बस गये। इनका प्रभाव हर प्रकारसे चारो ओर फैला। इनके राज्य संघटित हुए, इनका साहित्य पढ़ा जाने लगा, इनकी राज व्यवस्था चारो ओर

कायम हुई, ये सबही गावों और महल्लोंमें पाये जाने लगे, एक तिहाई भारतवासी मुसलमान हो गये। धार्मिक विचारोंपर भी इनके विचारोंका प्रभाव पड़ा; साथ ही ये अपने पुराने पैतृक हिन्दू आचार विचारको भूले नहीं। उसे भी मानते ही रहे और चारों ओरके वातावरणमें प्रचलित विचार भी सदा ही इन्हें भी प्रभावित करते रहे। एक नया देश, एक नये लोग इस अपूर्व समन्वयसे तयार होने लगे।

---

(१५)

हिन्दू और मुस्लिम

संभवतः यह उचित होगा कि थोड़ेमें हम उस नये समाजके रूपपर नजर डालें जो भारतमें इस्लामके फैलनेसे स्थापित हुआ। कहावत है कि पेड़ फलसे पहचाना जाता है। मजहबों, सम्प्रदायों, विचारधाराओं, समाज व्यवस्थाओंकी भी इसी प्रमाणसे परीक्षा करनी चाहिए। भिन्न-भिन्न विचार प्रवर्तकोंकी अपने पक्षमें यह दलील होती है जब उनके विचारोंके तथाकथित अनुयायियोंके अनाचारकी शिकायत की जाती है, कि यदि वास्तविक रूपसे सचाईके साथ उस सम्प्रदायविशेष या विचारपद्धतिविशेषका अनुनयन किया जाय तो कोई भी खराबी न हो, उसके मौलिक सिद्धान्तोंका हनन कर मक्कारीसे उसका नाम लेकर ऐसा किया जा रहा है। यह ठीक हो सकता है। पर यह तो ऐसी बात है कि सब ही लोग अपने पक्षमें कहते रहते हैं और कह सकते हैं। पर इससे कोई व्यावहारिक लाभ नहीं है। अगर किसी बातका बहुतसे लोग उलटा अर्थ लगावें तो कहनेवालेका भी दोष समझा ही जायगा। अगर किसी भी बातका गलत अर्थ पड़ता हो तो यह कहना ही होगा कि

उसमें कोई ऐसी त्रुटि है जो मनुष्यकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं है। जो बात व्यवहार्य नहीं है उसका मनुष्य-समाजमें प्रचार व्यर्थ ही नहीं हानिकर भी है। पेड़ जैसे सुन्दर जड़से नहीं पर सुन्दर फलसे पहचाना जाता है, *वैसे ही सम्प्रदायादि भी उनके अनुयायियोंके आचरणसे ही जाने जायँगे,* न कि उनके तथाकथित मौलिक सिद्धान्तोंसे। हिन्दू और मुस्लिम विचार-पद्धतियों और समाज व्यवस्थाओंका वास्तविक प्रभाव उनके अनुयायियोंपर क्या पड़ता है और पड़ा है यह हमें देखना चाहिए। यह प्रकार गलत भी नहीं है। साधारणतः सिद्धान्त तो सब अच्छे ही निर्धारित होते हैं, पर किस सिद्धान्तका मनुष्यपर उसकी प्रकृति और सांसारिक जीवनकी अनिवार्य स्थितियोंको देखते हुए क्या प्रभाव पड़ता है, और वह उस सिद्धान्तके *नामपर किस प्रकारसे जीवन व्यतीत करता है, इससे ही उस सिद्धान्तकी* सची और अच्छी परख हो सकती है।

मोटे तौरसे मुसल्मानके मनपर अपने मजहबका यह प्रभाव सदा बना रहता है और किसी दूसरे सम्प्रदायवालेके मुसलमानधर्ममें प्रविष्ट होते ही यह प्रभाव उसपर फौरन पड़ता है कि सब मुसल्मान देश-विदेश सब ही स्थानोंके भाई हैं, सबको सबका सदा साथ देना ही चाहिए, सबका धार्मिक कृत्य एक है, सबका खाना-पीना साथ है, सबका कर्तव्य है कि अपने साम्प्रदायिक समाजको दृढ़ और उसकी वृद्धि करें और यदि उसके ऊपर कोई खतरा आवे तो अपनी जान तक देकर उसकी रक्षा करें। इस भावका बाह्य-प्रदर्शन सदा इस रूपमें होता रहता है कि मुसलमान एक दूसरेका सदा समर्थन करते हैं, सब मुस्लिम देशोंको नाना प्रकारसे एक ही सूत्रमें बाँधे रहनेका प्रयत्न करते हैं, और एकके संकटमें दूसरेकी सदा सहानुभूति और सहायता रहती है। मुसलमानोंकी सब

छूतियोंमें बिना देश और कालका विचार किये, सबको ही गर्व रहता है, सब एक स्थानपर एक ही समय एक ही प्रकारसे ईश्वरोपासना करते हैं, सब सदा एक ही दस्तरखानपर भोजन करनेको तैयार रहते हैं, सब ही यह प्रयत्न करते हैं कि हमारे समाजकी वृद्धि हो और दूसरोंको अपने सम्प्रदायमें समाविष्ट करनेमें उद्यत रहते हैं, और जब कभी यह देखते हैं कि हमारे सम्प्रदायपर किसी भी प्रकारका खतरा है तो उसकी रक्षाके लिये अपनी जानतकको तुच्छ समझते हैं। सबको यह विश्वास रहता है कि हमारे संकटके समय हमारे सम्प्रदायके लोग हमारी अवश्य सहायता करेंगे और सबको यह भी विश्वास है कि मुसलमान मात्र होनेके ही कारण मरणोपरान्त हमें अनन्त सुख मिलेगा और हमारी सब त्रुटियाँ दयामय जगन्नियन्ता अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

हिन्दुओंके आन्तरिक भावोंमें इससे बहुत अंतर है। साधारण हिन्दूके मनमें यह भाव सदा रहता है कि हम बहुत बड़े-बड़े पूर्वजोंके उत्तराधिकारी हैं और हमारी सभ्यताकी अटूट शृंखला अनन्तकालसे चली आ रही है। जो कुछ हम हैं अपने पूर्व जन्मके कर्मके अनुसार हैं और अपने इस जन्मके कर्मोंके ही अनुसार हमें आगे जन्म लेते चले जाना पड़ेगा। हमें संसारमें यथासंभव कम लिप्त होकर दूसरे लोककी चिन्ता करनी चाहिए। संसारमें अपने और अपने कुटुम्बके परे हमारा साधारणतः कोई कर्तव्य नहीं है। हमें अपना धर्म अर्थात् अपने निजका धर्म बचाये रहना चाहिए और अपने निजके मोक्षकी सदा चिन्ता करनी चाहिए। जैसे सब अंगुली बराबर नहीं होतीं वैसे ही संसारके सब आदमियोंमें ऊँच-नीचका भेद है। वास्तवमें अपने अस्तित्वके परे सब माया है और अपनी ही चिन्ता करना उचित है। दूसरे क्या करते हैं

इसकी फिकर न कर अपने भोजन वस्त्रकी पवित्रता बनाये रहना चाहिए, यथासंभव सबसे अलग रहना चाहिए, अपने ईश्वरकी खोज भी सबसे पृथक होकर करना चाहिए, भोजन भी सबसे अलग होकर करना चाहिए। जिसको अपनेसे कुछ पानेका हक हो उसे देकर अपनेको बचाये रहना चाहिए। ऐसे भावोंका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-समाजमें विशिष्ट व्यक्ति बहुतसे हुए। बड़े-बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े योद्धा, बड़े-बड़े व्यापारी, बड़े-बड़े वीर सेवक सब ही इस समाजमें पाये जाते हैं। पर सब व्यक्तिगत महत्ताकी ही खोजमें रहते हैं। समाजका संघटन हम कहीं नहीं देखते। अगर होता भी है तो थोड़े ही दिनोंमें मतभेदके कारण लोग अलग हो जाते हैं। समाज संचालनके लिये जो जाति उपजाति की 'पंचायतें' हैं वे भी जब बुलायी जाती हैं तो समाज की उन्नति अथवा भलाईके लिये विचार नहीं करतीं, किसीको जातिसे च्युत करनेके ही लिये बिरादरीके लोग एकत्र होते हैं। सबको अपने निजी धर्म की रक्षा करने की इतनी फिकर है कि समाज की रक्षाका विचार भी नहीं होता। अपनी निजकी सबको इतनी चिन्ता है कि देश, जाति आदि की चिन्ता कोई नहीं करता। जो कोई राजा होता है उसे मान लेता है, उसके द्वारा जितना निजी फायदा हो सकता है, उठाता है। हिन्दू अपना जीवन पृथक रूपसे ही बिताता है, आवश्यकतामात्रके लिये दूसरों से सम्पर्क करता है। वह ईश्वरोपासना अलग करता है, वह भोजन अलग करता है, वह समाजमें मिलनेमें परेशान होता है, संघटनसे घबराता है, दूसरोंकी रायके सामने अपनी रायको दबाना पसंद नहीं करता, और यह समझ कि मेरी ही राय ठीक है, अगर किसीसे सम्बन्ध करना चाहता है तो इस आधार पर कि दूसरे सब मेरी ही राय मान लेंगे, मुझे किसी की राय माननेकी

जरूरत नहीं होगी। हिन्दुओंने इस प्रकारसे व्यक्तिगतवादी, छिन्न भिन्न स्वार्थपरायण, लोकहित और देशभक्ति रहित येनकेन प्रकारेण कामचलाऊ समाजव्यवस्था कायम की है जो प्रतिदिन दूसरों की शिकार और बार बार विघटित होती रहती है और जिसमें आदर्शवाद बहुत कार्यकुशलता कम, अहम्मन्यता बहुत लोकोपसंग्रह बुद्धि और देश और समाजके हितका विचार कम, अपने मोक्ष की चिन्ता अधिक दूसरोंके कष्टों की चिन्ता कम, अपनी स्वच्छन्दता अधिक समाज की रक्षाका भाव कम, पाया जाता है। तथापि भारतस्थित अन्य समाजोंका भी इस समाजपर अनिवार्य प्रभाव पड़ा ही है और उसको भी समझ लेना उचित होगा।

---

(१६)

भारतका नया समाज

हिन्दू और मुस्लिम धर्मोंके मौलिक सिद्धान्तों एवं दार्शनिक विचारों में एकता और समता है या न हो, उनका जो व्यावहारिक प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है वह परस्पर विरोधी सा मालूम होता है। भारतमें इन दोनोंका विशेष प्रकारसे संघर्ष हुआ और इस संघर्षसे अनिवार्यरूपसे समन्वय भी होता रहा। वातावरणका प्रभाव बलवानसे बलवानके ऊपर पड़ता ही है और धर्मपरिवर्तन करनेके बाद भी पुराने संस्कार और पुरानी परम्पराका कुछ तो असर रह ही जाता है। देशमें बहुतसे और भी सम्प्रदाय हैं जैसे पारसी, यहूदी, ईसाई आदि। पर इनकी संख्या भारतकी मनुष्य गणनामें तुलना करने पर नगण्य ही है यद्यपि इनके व्यक्तिविशेषों की महत्ताके कारण इनका प्रभाव भी भारतीय

समाजपर काफी है। हिन्दू कहलाये जानेवाले लोगोंमें अनन्त अवान्तर सम्प्रदाय हैं जिनके दार्शनिक विचारोंमें, कर्मकाण्डमें, नैतिक आदर्शोंमें बड़ा अन्तर है तिसपर भी इन्हें हम हिन्दूके ही नामसे पुकार सकते हैं। इनके कुछ सुधार वादी सम्प्रदाय मूल समाजसे अपनेको बिल्कुल ही पृथक मानने लगे जैसे सिक्ख जिनका राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव इधर बहुत बढ़ता गया है। -जैसा कोई चाहे इन्हें हिन्दू माने या न माने, पर इनके अधिकतर लोग हिन्दू समाजमें ही सन्निविष्ट हैं। जो कुछ हो, सब छोटे छोटे समुदायोंको अलग करके भी स्थूलदृष्टिसे दो सम्प्रदायविशेषोंमें भारतीय समाज विभक्त हो सकता है—हिन्दू और मुसलमान। इन्हींका संघर्ष रहता है, इन्हींके नामपर सब समस्याएँ पेश होती हैं और मामूली तौरसे जनसाधारणके भी मनमें ये ही दो भेद माने जाते हैं।

गणसंख्याके अनुसार भारतमें दो तिहाई हिन्दू और एक तिहाई मुसलमान हैं। दोनों ही सम्प्रदायके अनुयायी सब जगह बसे हुए हैं। दोनों ही सब पेशोंमें पाये जाते हैं। वर्ण उपवर्णोंमें हिन्दुओंके विभाजनका प्रभाव मुसलमान समाजपर भी यह पड़ा कि खास खास पेशे उन्होंने ले लिये और उनमें भी पेशोंके अनुसार व्यक्तिओं और समूहोंका पृथक्करण हो ही गया। यह बात यहाँ तक हुई कि कुछ विशेष पेशे मुसलमान ही करते रहे और अन्य विशेष पेशे हिन्दुओंने ही अपनाये। एक दूसरेसे काफी प्रेम और मित्रता भी हुई और दोनों ही सम्प्रदायोंके एक ही ग्रामके लोग बराबर एक दूसरेसे मिलकर एक दूसरेके सुख-दुःखमें साथ देते रहे। धर्म-परिवर्तन किये हुए मुसलमानोंका अपने पुराने हिन्दू रिश्तेदारोंसे भी बराबर स्नेह सम्बन्ध बना

रहा। एक दूसरेके भावोंका सब ही आदर करते थे और यह प्रयत्न रहता था कि व्यर्थका परस्परका वैमनस्य न हो। किसी प्रदेशमें हिन्दू अधिक, किसी प्रदेशमें मुस्लिम अधिक हो गये पर अपना-अपना काम करते हुए, अपने-अपने विचारोंके अनुसार पूजा उपासना करते हुए, सब ही इस भारतीय समाजमें सन्निविष्ट भी होते गये। सब ही स्थानोंमें मन्दिर मसजिद दोनों ही देख पड़ने लगे, सब ही स्थानोंमें सब ही उत्सवोंमें और मेलोंमें दोनों ही सम्प्रदायोंके लोग मिलने लगे, दोनों ही अपने प्रदेशोंकी एक ही भाषा बोलने लगे। चाहे राजा हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों ही उसे मानते थे, पर दोनों ही अपना व्यक्तित्व और साथ ही बहुत सी बातोंमें अपनी विभिन्नताके बाह्यरूपको भी बनाये रहे। यह बराबर कहा जा सकता था कि अमुक हिन्दू है अथवा मुसलमान। थोड़े-में मुसलमानोंने हिन्दुओंसे उनका वर्णभेद और व्यक्तिवाद बहुत-अंशोंमें ले लिया, उनके मेला, पूजा आदिके भी कुछ तरीके लिये, और हिन्दुओंने मुसलमानोंसे बहुतसे उनके रीति-रस्म लिये जैसे स्त्रियोंमें परदाकी पद्धति, वस्त्रोंकी काट-छाँट और शिष्टाचारके प्रकार। साथ ही फारसी आदिका साहित्य और अली, हसन, हुसैन आदि उपास्य वीर पुरुष भी उन्होंने ग्रहण किये।

करीब एक हजार वर्षके ऐतिहासिक विकासने ऐसा नया भारतीय समाज तैयार किया। हिन्दू और मुसलिम राजों और योद्धाओंका शासनाधिकारके लिये लगातार झगड़ा होता रहा। दोनों ही तरफसे दोनों ही सम्प्रदायके लोग युद्ध करते रहे, पर भारतीय समाज एक विशेष रूप धारण कर अपने प्रवाहमें चलने लगा। छोटे मोटे लड़ाई झगड़े तो होते ही रहे पर साधारण समाजपर राजाओंके युद्धों और

आकांक्षाओंका प्रभाव नहींके बराबर था। जो विजय प्राप्तकर राजा हो जाता था उसे ही प्रदेशविशेषके सब लोग ही स्वीकार कर लेते थे। राज्याधिकारका झगड़ा व्यक्तिविशेषोंका समझा जाता था और मन्त्रियोंसे लेकर सैनिकों तकमें दोनों ही तरफ दोनों ही सम्प्रदायके लोग रहते थे जो अपने मालिकके लिये लड़ते थे। साथ ही हिन्दू राजा हिन्दू राजा से और मुस्लिम राजा मुस्लिम राजासे प्रभुत्वके लिये मुठभेड़ लगातार करते रहे। जनसाधारणकी इन सब प्रसङ्गोंमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती थी। पर राजाका असर प्रजापर पड़ता ही है चाहे उससे प्रजा कितनी ही बचे। लगातार बदलते हुए राज-प्रबन्धोंके कारण और भिन्न-भिन्न राज्योंकी सीमाओंके रोज परिवर्तन होते रहनेके कारण अवश्य ही समाजमें बेचैनी और अव्यवस्था रही होगी। दुष्टगण ऐसी स्थितिमें अवश्य ही लाभ उठाते थे और प्रजाजनको अपनी रक्षा करनेका भार स्वयं ही उठाना पड़ता था। कर, केवल राजाके निजी आवश्यकताओं और आकांक्षाओंकी पूर्तिमात्रके लिये जैसे दिया जाता था। देशभक्तिके अभावके कारण, व्यक्तिगत जीवनको सुरक्षित रखनेकी अभिलाषाके कारण, अपने पेशोंमें शान्तिके साथ पड़े रहनेकी आकांक्षाके कारण, अपने धार्मिक कृत्यों आदिको बिना हस्तक्षेपके निबाहनेकी सतत इच्छाके कारण, अवश्य ही सुदृढ़ राज प्रबन्धकी प्रबल प्रेरणा सबके ही मनमें रही। यों भी जनसमूह शान्ति चाहता है, बड़े-बड़े देशभक्तिसे विह्वल देश भी सर्वथा शान्तिभंग और समाज विघटनके भयसे आत्मसमर्पण कर ही देते हैं। वीरसे वीर लोगोंके भी बरदाश्तकी एक सीमा होती है। राणा प्रताप भी अपनी बच्चीके हाथसे बिल्लीको रोटी छीनते देख विह्वल हुए थे और अकबरके पास सन्धिका सन्देश उन्होंने भेजा था। फ्रांसने आतुर होकर सन् १९४० में

जर्मनीके सामने सिर झुका दिया था। भारतीय जनता भी अराजकताके युगमें शक्तिशाली राजाकी मनोकामना करती ही रही। ऐसी लौकिक और आध्यात्मिक स्थितिमें अङ्गरेजोंकी राजशक्तिकी स्थापना भारतमें हुई।

---

(१७)

यूरप और भारत

यूनानके वैभव और रोमके साम्राज्यके लुप्त होने के बाद यूरपमें अन्धकारका युग छा गया। राज संघटन सब शिथिल हो गये। साहित्य, कला-कौशलका नाश हो गया। जनसाधारणका जीवन कठिन होता गया। पर ज्योतिकी एक अच्छी शिखा इस अन्धकारमें जलती रही। ईसाई मजहबका पर्याप्त जोर था। उसके पुरोहितोंने स्थान-स्थान पर आश्रम कायम किये थे जहाँपर पठन-पाठन होता था जिससे अक्षर ज्ञान सर्वथा लुप्त नहीं होने पाया। वहाँपर थोड़ी बहुत खेती आदि कर आश्रमवासी अपनी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरा करते थे जिससे भोजन-वस्त्रादि पैदा करनेकी कला बनी रही। ये स्थान पवित्र माने जाते थे जिसके कारण चोर डाँकू इनपर आक्रमण नहीं करते थे। दुःखियोंके लिये ये सुरक्षित आश्रय थे, ज्ञानके पिपासुओंके लिये ये विद्यालय थे, आध्यात्मकी खोज करने वालोंके लिये ये उपयुक्त साधन थे। जब इस्लाम धर्मकी स्थापना हुई और उसका जोर बढ़ा तो स्पेन मुसलमानोंके हाथमें आ गया। अफ्रीकाके उत्तरके भागोंका अपने कब्जेमें करते हुए ये स्पेनमें आये। आठवीं शताब्दीके आरंभमें ही फ्रांसमें घुसते हुए इनकी गहरी हार हुई, पर स्पेनमें इनका अनन्य

प्रमुख सात शताब्दियों तक बना रहा। यहां पर कार्डोवाके विश्वविद्यालयमें यूरपके अंधकार युगकी दूसरी शिला जलती रही। यहांपर उस समय विद्याका बड़ा भारी केंद्र स्थापित हुआ, यहांपर मुस्लिम कलाका बहुत अच्छा प्रदर्शन उस समयकी मसजिदों और अन्य भवनोंमें हुआ। साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि यद्यपि इन कई शताब्दियोंके युगको अंधकारका युग कहा जाता है तथापि पैरिस, आक्सफर्ड, कैंब्रिज ऐसे बड़े बड़े विश्वविद्यालय भी इसी युगकी कृतियोंमें हैं, बड़े बड़े सुन्दरसे सुन्दर गिर्जे मण्डप आदि भी इस युगमें बने, और पवित्र रोमन साम्राज्य से लेकर वेनिस और फ्लारेंस ऐसे नगरोंके राज-संघटनका भी प्रयत्न होता ही रहा।

यूरपके लोग येन केन प्रकारेण चले जा रहे थे जब उनका पुनर्जन्म हुआ, वे यकायक जाग उठे, चारो तरफ रोशनी ही रोशनी दिखलायी देने लगी। धर्म-सुधारकोंने ईसाई धर्ममें कालकी गतिसे आयी हुई खराबियोंको दूर करनेका प्रयत्न किया और सुधार संस्थाएं कायम कीं। इंगलेंड फ्रांस आदि देशोंमें राष्ट्रीय शासन प्रबंध कायम हुआ। साहित्य कला-कौशल आदिमें बड़ी उन्नति हुई। जहाजोंपर चढ़ चढ़ लोग संसारके अन्य प्रदेशोंकी खोजमें निकल पड़े और विज्ञान आदि की आश्चर्यजनक प्रगति होने लगी। वाणिज्य व्यवसाय भी चारो ओर फैलने लगा। यूरपवालोंको अमेरिका और भारत दोनोंका प्रत्यक्ष ज्ञान १५वीं शताब्दीमें हुआ जब समुद्रके रास्ते पुर्तगालके वास्को डि गामा हिन्दोस्तान पहुंचे और स्पेनके क्रिस्टोफर कोलंबस अमेरिका गये। इंगलैंड टापू है। उसके चारो ओर समुद्र है। भौगोलिक दृष्टिसे इसीके कारण यह संरक्षित रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसीके कारण इसका इतना

महत्त्व है। सबसे अलग होनेके कारण इसने अपनी राज-व्यवस्था एक विशेष प्रकारकी कर ली और समुद्रपर ऐश्वर्य पाकर इसने संसारव्यापी अपना साम्राज्य कायम किया। पहले तो समुद्रपर लूटमार कर दूसरे देशोंके जहाजोंका माल अंगरेज उड़ा लेते थे, पर पीछे वे स्वयं व्यापार करने उठे। व्यापारका संबंध भारतका और यूरपके देशोंका बड़ा पुराना है। जमीनके रास्ते यहांके व्यापारी सरहदके पार माल भेजते रहे। यूरपमें वेनिसका शहर व्यापारका बड़ा भारी केंद्र था। यूरपमें पूर्वसे चीजोंके आनेका वही मोहाना था। वहांके लोग मालोमाल हो गये थे। १६वीं शताब्दीमें भी यूरपके लोग बर्फका प्रयोग नहीं जानते थे। उनके लिये खाद्य पदार्थोंको सुरक्षित रखना कठिन था इस कारण मसालोंकी आवश्यकता पड़ती थी। हमारे यहां अचार जो बनाया जाता है वह वास्तवमें फल सब्जी आदिको बहुत दिनों तक मसालेके द्वारा सुरक्षित रखनेका ही तरीका है यद्यपि भोजनके समय हम संरक्षित फल और सब्जीसे अधिक मसालेको ही अब पसंद करने लगे हैं। वेनिस भारतद्वारा मसालोंका खूब रोजगार करता था और यूरोपीय लोगोंसे खूब लाभ उठाता था। इसका लालच इतना बढ़ा कि उसने मसालोंका दाम ४०० और ५०० गुना कर दिया। आवश्यक वस्तु होनेके कारण लोग इतना दाम भी देकर चीजें लेते ही रहे। इंगलैंड वालोंको यह बरदाश्त न हुआ।

१६वीं शताब्दीके अन्तमें इंगलैंडमें ईस्ट इंडिया कंपनी नामकी संस्था उस समयकी रानी एलिजबेथकी अनुमतिसे कायम की गयी। मसालोंके रोजगारके ही लिये यह कायम हुई और भारतमें रोजगारके लिये यह आ पहुंची। यहांके मुगल सम्राटसे और जो छोटे मोटे राजा थे उनके शासकोंसे इसने व्यापार करनेकी अनुमति ली और इसके बहुतसे

व्यापार केंद्र स्थान स्थानपर कायम हो गये। स्पेन, पोर्तुगल, फ्रांस भी व्यापारके लिये भारत पहुंच चुके थे। इन यूरोपीय देशोंके प्रतिनिधियोंमें भयंकर चढ़ा उतरी होने लगी। व्यापारी लोग सैनिक हो गये, वणिक शासक होने लगे। भारतकी उस समयकी राजनीतिक स्थिति और भारतीयोंकी परम्परागत प्रकृतिने इन यूरोपीय देशोंकी आकांक्षाओंकी तृप्तिमें सहायता भी दी। इनकी आपसमें तथा देशी राजाओंसे लड़ाइयाँ हुईं और मुगल साम्राज्यकी आन्तरिक कमजोरियोंके कारण जब उसका पतन होने लगा तब और बहुतसे देशी प्रतिद्वंद्वियों तथा राज्यके इच्छुकोंके साथ साथ इन यूरोपीयोंने भी अपना भाग्य आजमाया और अन्तमें अँगरेजोंका ही साम्राज्य सारे देशपर फैल गया, इन्हींका अनन्याधिकार सब लोग मानने लगे। यद्यपि कुछ स्थानोंपर फ्रांसका कुछपर स्पेन और पुर्तगालका राज्य बच गया, और बहुतसे देशी रजवाड़े भी कायम रहे, पर भारत अँगरेजोंका ही हर तरहसे होगया। भूगोलके मानचित्रोंमें सारे भारतका रंग लाल ही होता है जो अँगरेजोंका रंग है। पंजाबके राजा रंजीत सिंहका कहना ठीक ही निकला कि 'सब लाल हो जायगा'।

---

(१८)

भारतमें अँगरेज

भारतमें अँगरेजोंके आनेके इतिहासमें और दूसरी जातियोंके आनेके इतिहासमें कई महत्वके अन्तर हैं। वे स्पष्ट हैं पर शायद उनकी उद्धरणी कर देना अनुचित न होगा। अँगरेज व्यापारी होकर आये, अन्य सब जातियाँ आक्रमण करने आयीं। अँगरेज वाणिज्य की

सामग्री लेकर आये, व्यापारियोंके ही अनुकूल भावोंसे प्रेरित होकर यहाँके राज्याधिकारियोंसे अपने कामके लिये अनुमति माँगी। और लोग अस्त्र शस्त्र लेकर आये तथा उन्होंने फौरन युद्ध ठान दिया। अँगरेज समुद्रसे आये, और जातियाँ स्थल मार्ग से आयीं। अँगरेज दक्षिणसे उत्तर बढ़े, और जातियाँ उत्तर से दक्षिण गयीं। अँगरेज एक एक कदम मजबूत करते हुये बढ़े, एक एक प्रदेशको अपने अधीनकर दूसरे प्रदेश की तरफ चले, और जातिके लोग बिना एक स्थानपर राज्य-व्यवस्था सुचारुरूपसे कायम किये, दूसरे प्रदेशोंके लोभसे आक्रमण करने निकल पड़ते थे और फिर हट जाते थे। और जातिके लोग या तो लूट मारकर वापस अपने घर लौट जाते थे या यहाँ बस जाते थे। अँगरेज न लौटे न बसे, इनके राज्य-प्रबन्धका सूत्र इनके ही देशमें तीन हजार कोस दूर रहा, व्यक्तिगत रूपसे ये बराबर वापस घर जाते रहे और दूसरों को अपने स्थान पर यहाँ भेजते रहे। सामूहिक रूपसे यहाँ बने रहे पर किसीका यहाँपर किसी भी प्रकारसे प्राण सम्बन्ध न हो सका। ये प्रकाशरूपसे कोई लूट-मार नहीं करते थे, व्यापारिक ढंग से या शासनाधिकारका दुरुपयोगकर ये अपना खजाना भरते थे। ऊपरसे ये सुव्यवस्था, शान्ति और कानूनका आधिपत्य ही कायम करते रहे। अन्य देशोंके राजा या योद्धा अपना महत्व बढ़ाने या राज्य-की खोजमें काम करते थे, अँगरेज अपनी जाति और देशके लाभ और उन्नतिके लिये प्रयत्नशील थे। और लोगोंका राज्य छोटे छोटे भूखण्डोंपर ही अधिकतर रहा। बीच-बीचमें कभी कभी भारतका प्रायः पूरा पूरा देश एक सम्राट्की अधीनतामें सम्मिलित अवश्य हुआ, पर तब भी कोई न कोई कोना छूट ही जाता था। अशोकके समय अफगानिस्तानका आजका

छेन न करने पावेगा और यदि कोई करेगा तो उसका प्रतीकार राज्यकी तरफसे फौरन होगा। इसी विश्वासमें राजाका गौरव है, राजकी शक्ति है, राजकी लोकप्रियता है। शान्तिका प्रथम अङ्ग कानून होता है। राजकी तरफसे नियमादि बनते हैं जिससे सबको बतला दिया जाता है कि अमुक-अमुक प्रकारकी कार्रवाइयाँ जुर्म हैं जिनके लिये सजा मिल सकती है। कौन-कौन पेशा कानूनके अनुकूल हैं, कौन-कौन इसके विरुद्ध हैं यह भी साफ कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ प्रचलित भावोंके अनुसार शारीरिक बल प्रयोगसे चोरी करना, लूट-मार करना कानूनके विरुद्ध है। व्यापार वाणिज्य करके दूसरोंका धन अनैतिक रूपसे भी लेना कानूनके अनुकूल है। पहला प्रकार बरतनेवाले कानूनसे दण्ड पाते हैं, दूसरे प्रकारके अनुसार चलनेवाले कानूनकी रक्षा प्राप्त करते हैं। कानून निश्चित हो जानेपर यह भी आवश्यक होता है कि ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि लोग कानूनके विरुद्ध न जा सकें और विरुद्ध आचरण करनेका इरादा करनेवालोंको यथासम्भव रोका जाय। ऐसी अवस्थामें शान्तिका दूसरा अङ्ग यह होता है कि स्थान-स्थानपर राजके द्वारा प्रबन्ध हो कि कानून-विरोधियोंकी चेष्टाएँ समयमें रोकी जा सकें। यह प्रबन्ध चौकीदारों और पुलीसवालों द्वारा, जगह-जगह थानों और कोतवालियोंको कायम और मजिस्ट्रेटों आदिकी नियुक्ति कर दिया जाता है। शान्तिका तीसरा अङ्ग यह है कि कानूनके विरुद्ध आचरण करनेवालोंको उचित रूपसे पर्याप्त दण्ड दिया जाय। यह प्रबन्ध अदालतों और जेलखानोंको कायम कर किया जाता है। आन्तरिक शान्तिके साथ-साथ बाहरसे आक्रमणको रोके रहनेकी भी आवश्यकता रहती है जिसके लिये बड़ी-बड़ी सेनाओंका आयोजन किया जाता है। जब राज अपनी आज्ञाओंको मनवा सकता है

और जब जनसाधारण भी उसके तरीकोंको ठीक समझ उसके अनुसार चलते हैं, राज द्वारा स्थापित संस्थाओंका उपयोग करते हैं और राजके संचालनमें केवल कर ही नहीं पर वैतनिक और अवैतनिक रूपसे सहायता भी देते हैं, तब प्रजामें शान्ति होती है और राज बलवान हो जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि साधारण दृष्टिसे देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस प्रकारकी शान्तिकी स्थापनामें अंगरेज भारतमें बहुत ही सफल हुए हैं। इस सफलतामें बड़ी भारी सहायता उस शिक्षा-पद्धतिसे मिली है जो अंगरेजोंने भारतमें कायम की। इस शिक्षाके कारण हमने अपने देशको बहुत ही हीन और दीन अवस्थामें देखा, अंगरेजोंके प्रति हममें बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति हुई, हम उनके प्रकारोंके समर्थक हुए, और उनकी नौकरियोंमें उत्सुकतासे जाकर और बड़ी ही विश्वासपात्रतासे उनका काम कर हमने हर्षसे उनके राज्यकी नीव दृढ़ की। साथ ही साथ इस शिक्षाने हमारे मनमें नयी आकांक्षाएं भी पैदा की। हमारे पढ़े लिखे लोग अंगरेजी प्रकारसे रहना पसंद करने लगे और अंगरेजोंसे सामाजिक बराबरी करने लगे, अपने देशमें भी अंगरेजी प्रकारकी सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं चाहने लगे, अंगरेजोंकी ही तरह स्वतंत्रताकी भी अभिलाषा करने लगे। अगर यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि इस शिक्षाका परस्पर विरोधी प्रभाव हमारे ऊपर पड़ने लगा। हम एक तरफ इनकी नौकरी करते थे, दूसरी तरफ स्वतंत्रता चाहते थे। हम एक तरफ अंगरेजी पढ़कर अपने देशकी परम्पराके प्रति तिरस्कारका भाव रखने लगे, दूसरी तरफ अपने देशको भी समृद्धशाली बनाकर उसे अन्य देशोंकी पंक्तिमें बैठानेकी फिकरमें पड़े। हम एक तरफ ग्रामके अशिक्षित अपने भाइयोंसे ही अलग होने लगे, दूसरी तरफ उनके योग

बलवान् और निर्बलमें अन्तर देखता हुआ भी और बहुत तरीकेसे उसे मानता हुआ भी, वह उसे दूर करनेका प्रयत्न सदा करता है और अपने समाजके सदस्योंको ऐसी अवस्थासे बचाना चाहता है जिसे वह मनुष्यके योग्य नहीं मानता, और सबके लिये सुखमय जीवन व्यतीत करनेकी व्यवस्था करता है। उसका ध्यान इस लोकमें है, परलोकमें नहीं। उसे यह फिकर नहीं कि हम कहाँसे आये और कहाँ जायंगे। वह इसी लोक के लिये प्रबंध करता है और इसमें ही अपना यश और अपनी कृति छोड़ जानेकी अभिलाषा रखता है। समाजकी स्थिरताके लिये बहुमतके आगे वह अपना मत दबा देता है और किसी बातके निर्णय हो जानेपर वह पहले विरोधी होते हुए भी उसके पक्षमें ही काम करता है। वह अपने देशके ही तरीकेको सर्वोत्तम मानता है, अपने जातिगत विचारोंको ही ठीक समझता है। इन्हींका वह प्रचार करता है और जहाँ जाता है अपने तरीकोंको नहीं ही छोड़ता और दूसरोंको उन्हींके अनुसार कार्य करनेके लिये विवश करनेका प्रयत्न करता है।

हम भारतीयोंकी प्रकृति और इसी कारण हमारे आचार-विचार भिन्न हैं। अधिकतर हिन्दू — और उनकी विचारशैलीका इतना प्रभुत्व है कि अन्य सम्प्रदायोंके भी अधिकतर अनुयायी — इस संसारको मिथ्या मानते हैं और यदि पूर्णतया मिथ्या न मानें तो भी इसका कोई विशेष महत्व नहीं समझते। उसे अस्थायी, अनित्य, धोखेकी टट्टी ही मानते हैं। हमारी अभिलाषा आत्माको शान्ति देकर परलोकमें सुख पानेकी होती है, इस कारण संसारको अनिवार्य दुःखका क्षेत्र समझ उससे भागना चाहते हैं। हम लौकिक विद्याओंकी खोज नहीं करते और कमसे कम वस्तुओंसे काम चलाकर संतोष पानेकी चिन्ता करते रहते हैं। हम प्रायः उद्यम और

उत्साहहीन देख पड़ते हैं, इसी कारण हम साहसी नहीं होते और मृत्युसे भयभीत से दिखाई पड़ते हैं। समाज और देशका हमें कभी ख्याल ही नहीं होता, हम व्यक्तिगत जीवनकी सुख-सम्पत्तिसे प्रसन्न रहते हैं और उसके सामने सब कुछ हेय मानते हैं। समाजमें परस्परकी निर्भरताको हम नहीं समझ पाते और इस कारण निर्बल अंगोंको पुष्ट करनेकी भी फिकर नहीं करते और अपना ही अन्तमें अहित कर डालते हैं। हम व्यक्ति-व्यक्तिको किसी भी बातमें बराबर माननेको कदापि तयार नहीं हैं, हमारे यहाँ ऊँच नीचका ही विचार रहता है। इसके कारण हम सब एक दूसरेके प्रति अस्पृश्य और अविश्वसनीय बने रहते हैं। हम परस्परका अन्तर बढ़ाते हैं, उसे दूर करनेका यत्न नहीं करते। सब बातको कर्म और किस्मतके नामसे मानो हम समझ लेते हैं। हम संसारमें कोई स्थायी परम्परा नहीं कायम करनेकी अभिलाषा रखते और अपना ध्यान सदा मृत्यु और मरणोपरान्त जीवनपर केन्द्रीभूत करते हैं। हमको अपनी व्यक्तिगत रायपर ही भरोसा रहता है, उसमें लेशमात्र भी दबनेको हम नहीं तयार हैं और चाहे कितने ही लोगोंका मत हमारे विरुद्ध हो, हम उसे छोड़कर अपने ही मतमें प्रसन्न रहते हैं। साथ ही हम मान लेते हैं कि दूसरे भी इसी प्रकारके हैं और इस कारण हम किसीके आचार-विचारमें हस्तक्षेप भी नहीं करते और हर विचारके लोगोंको और हर आचारके समाजको अपने देशमें सदा स्थान देनेको तयार रहते हैं। देशभक्तिके अभावमें हम अपने देशकी रक्षाका कोई सामूहिक प्रबंध नहीं करते और जबतक कोई राजा हमारे निजी जीवनमें हस्तक्षेप नहीं करता, हम उसे माननेको तयार हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि अंगरेज और हम एक दूसरेको नहीं समझ पाते तो कोई आश्चर्य नहीं है। भारतमें जितनी जातियाँ आयीं, रहीं, बसीं उनमें सबसे अधिक

प्रभुत्व और प्रभाव अगरेजोंका ही हमारे देशपर पडा, पर जितना अतर हमारा इनका सदासे रहा उतना और किन्हीं दो जातियोंका इस भूमिपर सभवत. नहीं रहा।

---

(२१)

अंगरेजी राज्य और भारतीय समाज

अगरेजी राज्यके कानून और शिक्षाकी पद्धतियोंके कारण उसका प्रभाव भारतीय समाजके अग अगपर पडने लगा। जान और मालके सबधमें कानूनका प्रत्यक्ष प्रभाव तो पडता ही है, साथही समाजके बहुतसे रीतिरस्मोंके ऊपर भी वह असर डालने लगा क्योंकि नये कानून और पुराने आचारोंका जब सघर्ष होता था तो कानूनका ही गौरव अधिक समझा जाता था। सती और कन्या वधका मामलेमें यह बात नहीं थी, बाल विवाह, विधवा विवाह, स्त्राधन आदिके सबधमें भी सघर्ष चलनेका साधन उपस्थित हो गया। इस सघर्षको बडी भारी सहायता नयी अगरेजी शिक्षापद्धतिसे मिली जिसके कारण भारतीयोंके मस्तिष्कमे अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न हो गयी और वे सबही बातोंको नयी दृष्टिसे देखने लगे। भारतीय समाजकी अभिलाषा तो यही थी कि १८ वीं शताब्दीकी अराजकता दूर हो, व्यक्तिगत जीवनकी अनिश्चितता भी हटे, लोग अपने कौटुम्बिक और आर्थिक कारबार बिना रोकटोकके, बिना भय आसकाके कर सकें। वे उचित कर देनेको तयार थे पर गवर्नमेंट तरफसे वे और किसी प्रकारका हस्तक्षेप अपनी सामाजिक स्वतत्रतामें नहीं चाहते थे। कई प्रकारसे छोटे मोटे पैमानेपर विरोधका भी प्रदर्शन हुआ, पर अगरेजी राजकी शक्ति बहुत ही

बढ़ गयी, एकता और संगठनके अभावमें कोई भी प्रदर्शन पर्याप्त प्रभावशाली नहीं हो सका और जिस कारण एक प्रदेशके लोगोंने दूसरे प्रदेशके लोगोंको पराजित करनेमें अंगरेजोंकी सहायता की थी, उसी कारण ये सब प्रदर्शन बेकार हुए और भारतीयोंके जीवनके सभी अंगोंपर अंगरेजोंका प्रभुत्व हो गया। जिसका विरोध करना अंगरेज अपने लिये अभीष्ट समझते थे, उसके विरुद्ध अपनी शक्तिका प्रयोग करते थे, नहीं तो उदासीन रहते थे। भारतीय समाज एक नये ढरेंसे चलने लगा।

इस राजने सारे भारतकी एकता प्रथम बार व्यवहार्य रूपमें कायम की। सारे देशमें एक प्रकारकी समता आ गयी। कोने कोनेमें एक ही प्रकारकी राजव्यवस्था हो गयी। इस राजकी इस देशको यह बड़ी भारी देन है। दूसरी देन भाषाकी है। नयी शिक्षाके प्रभावमें पड़कर सब ही प्रदेशों और सम्प्रदायोंके लोग अँगरेजी पढ़ने लगे। अँगरेजी हमारे लिये अन्तर्प्रान्तीय भाषा हो गयी। सब प्रदेशोंके लोग उसीमें विचार विनिमय करने लगे। ऐसा करनेसे उन्हें अपने महान् देशकी परम्पराओं, आचार-विचारों, आदर्शों और आकांक्षाओंमें एक अद्भुत और नूतन प्रकारकी एकता देख पड़ने लगी। जब भाषा भिन्न होती है और भावोंका प्रदर्शन नहीं हो सकता तो सहानुभूतिका होना कठिन होता है। सम भाषा बड़ा भारी बन्धन है। सब ही प्रदेशोंके लोग एक स्थानपर एकत्र होकर एक भाषामें बात करने लगे, अपने दुःख सुख सुनाने लगे और देशकी स्थितिपर नये दृष्टिकोणसे विचार करने लगे। इसकी तीसरी देन राष्ट्रीयताकी है। अँगरेजी साहित्यमें स्वतन्त्रताकी बड़ी उपासनाकी गयी है, अँगरेजी इतिहासमें देशकी सेवाके निमित्त सब कुछ किया गया है। हमारे देशमें भी नयी शिक्षाके साथ नयी राष्ट्रीयताके भाव

(२२)

आजका भारत

सभवतः यह अनुचित न होगा यदि हम आजके भारतपर सरसरी तौरसे दृष्टिपात करें। यदि हम हवाई जहाजपर चढकर इतनी दूर जाकर हवामें खडे हो जाय कि पृथ्वीकी सब चीजें स्पष्ट देख पडे तो हम क्या देखेंगे। उत्तरमें हिमालयके ऊचे शृगोसे लेकर दक्षिणके समुद्र तक हमारा देश फैला हुआ है। पूर्व और पश्चिममें भी काफी जमीन इसी देशकी फैली हुई है। इसमें ऊचे ऊचे पहाड, घने घने जगल, बडी बडी नदियाँ, लबे चौडे मरुस्थल, सब मौजूद हैं। ऊपरसे नीचे तक कितने ही बडे छोटे नगर बसे देख पडते हैं। काफी जमीनपर खेती हो रही है। कहीं कहीं कल कारखाने भी हैं, कहीं कहीं खानोंमेंसे कोयला, नमक आदि भी निकाला जा रहा है। पाससे देखनेसे यह भी मालूम होगा कि बहुत बडे बडे शहर बहुत कम हैं, छोटे छोटे शहर काफी मात्रामें मौजूद हैं, पर अधिकतर बस्तियाँ कच्ची हैं और जोते बोए हुए खेतोंके बीचमें हैं। कहीं कहीं पक्की इमारतें भी इनके बीचमें दिखाइयाँ और पुलिसके थानोंकी देख पडती हैं, सडक भी बहुत सी नजर आती हैं, रेल और मोटरके साथ साथ बैलगाडी नावादिकी भी सवारियाँ देख पडती हैं। समुद्रके किनारे किनारे कई बदरगाह भी हैं जहाँ जहाजोंकी भी भरमार मालूम होती है। ईश्वरोपासनाके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके बहुतसे मदिर मसजिद शिवाले गिर्जे आदि भी देख पडते हैं। जेलखाने, न्यायालय, विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, अस्पताल आदि भी हैं। बडे राज्याधिकारियोंके रहनेके लिये बडे बडे भवन भी देख पडते हैं। धनियों, पूजीपतियों, भूमिपतियोंके भी सुन्दर निवास स्थान भी बने हुए हैं। पाससे देखनेसे मालूम पडता है कि असख्य

लोग इस भूमिपर बसे हुए हैं, जिन्हें भयंकर परिश्रमके साथ साथ काफी खतरेमें जिंदगी बसर करनी पड़ती है। हर तरहके दैवी और मानुषिक अनाचार और अत्याचारके ये शिकार बने रहते हैं। यह प्रतीत होता है कि देशका धन बढ़ानेके लिये देशके प्राकृतिक साधन पहाड़, नदी, जंगल खानादिका अधिक प्रयोग हो सकता है, पर होता नहीं।

यदि हम भारतीय समाजका अनुसंधान करें तो मालूम होगा कि अधिकतर लोग कृषि कर या कृषिपर निर्भर रोजगारसे अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। ये लोग घोर दरिद्रतामें अपना सारा जीवन व्यतीत करते हैं, इन्हें भर पेट खानेको भी नहीं मिलता, इनके घर बड़े ही खराब और अनुपयुक्त होते हैं, इनको पर्याप्त वस्त्र तो स्वप्नमें भी नसीब नहीं और इनमें शिक्षाका सर्वथा अभाव है। इनका दिन न केवल जंगली जानवरों और सर्पादिके भयमें बीतता है, पर ये हर प्रकारके अपनेसे ऊपरकी श्रेणी-के और आपसके ही मनुष्योंसे भी सदा भयभीत रहते हैं। इन्हें अपनी भूमिका कर देना होता है, चाहे गवर्मेंटको सीधे दें, चाहे जमींदारको दें। इस कर की अदायगी बड़ी मुश्किल चीज है और इसके लिए बड़ी सख्ती की जाती है। फिर अपने ही गाँवके उच्च वर्गके लोगोंसे या अधिक बलशाली व्यक्तियोंसे इन्हें सदा भय लगा रहता है कि ये आकर हमारा खेत न काट लें, हमारा खरिहान न जला दें, हमारे घरमें सेंध न मारें, हमारे बीबी-बच्चोंका अपमान न कर दें। नाना प्रकारके राज कर्मचारियोंसे भी इन्हें भयभीत रहना पड़ता है। साथ ही इनके पढ़े लिखे भाई भी इन्हें काफी तंग किया करते हैं और इनसे अनुचित लाभ उठाते हैं। जो कृषि सम्बन्धी और श्रम-प्रधान पेशोंमें लगे हुए मजदूर हैं उनकी भी कम या बेश यही हालत है। इन लोगोंके बाद छोटे छोटे महाजनों, दूकान-

दारों, ग्राम शिक्षकोंका उल्लेख करना चाहिए। इनकी भी आमदनी बहुत ही थोड़ी होती है पर श्रमजीवी न होकर बुद्धिजीवी होने से ये अपने हाथ पैर नहीं चला सकते और ऊंचे पैमानेसे रहना भी चाहते हैं। इनकी भी हालत कई दृष्टियोंसे दयनीय है। भारतमें एक बहुत बड़ा वर्ग सरकारी नौकरोंका है। ये अधिकारप्राप्त राजपुरुष हैं। नाना प्रकारके ओहदोंसे विभूषित नाना रूपमें ये सब स्थानोंपर मौजूद रहते हैं और गैर-सरकारी जनता इनसे सदा भयभीत रहती है। इनके संबंधमें अलगसे और कुछ विस्तारसे हम आगे कहेंगे। गैर-सरकारी लोगोंमें पढ़े लिखे लोगोंका भी एक अत्यावश्यक गौरवयुक्त वर्ग तयार हो गया है जिसमें अधिकतर वकील हैं और पर्याप्त संख्यामें डाक्टर, शिक्षक, व्यापारी, व्यवसायी भी पाये जाते हैं। इनकी अपनीही दृष्टिमें अपना बहुत बड़ा गौरव और महत्व है और समाजपर इनका बोझ भी काफी है। जो राजा, नवाब, पूंजिपति, भूमिपति आदि श्रेष्ठ वर्गके लोग हैं वे तो विशेष बोझ समाजपर रखते ही हैं। समाजकी सेवा इनके द्वारा बहुत कम होती है, पर समाजको इनकी सेवा बहुत कुछ करनी पड़ती है। इस मनुष्य समाजकी यह विशेषता सी मालूम पड़ती है कि इसमें आदमी आदमीमें बड़ा भेद है, और भिन्न भिन्न आर्थिक वर्गोंका ही भेद नहीं है, संस्कृतिका भी बड़ा भेद है, और साम्प्रदायिक विचारों, रीति-रस्मोंमें भयंकर अन्तर होनेके कारण परस्परका बड़ा झगड़ा है और अकसर सशस्त्र बलवे भी हो जाते हैं। इस समाजके अन्दर किसी विदेशी जातिका अनन्य प्रभुत्व है। इस जातिके लोग बहुत थोड़ेसे देख पड़ते हैं पर उनका गौरव बहुत बड़ा है और उनका अधिकार सर्वोपरि है।

भारतीय समाजमें सबसे महत्वका पद सरकारी नौकरका है। चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा, उसका गौरव एक विशेष प्रकारका है और

समाजमें उसे सदा ऊँचा ही स्थान दिया जाता है। सरकारी नौकरोंका बड़ा ही सुदृढ़ संघटन है और ये एक दूसरेका समर्थन सदा करते हैं, एक दूसरे-की सहायता भी सदा करते रहते हैं। इनका भाव ऐसा है कि देश हमारे लिये बना है, देशवासीका कर्त्तव्य है कि हमारी सेवा करते रहें, हम देशकी सेवा करने या देशवासियोंकी रक्षा करनेके लिये नहीं नियुक्त किये गये हैं। यों तो खास प्रकृतिके लोग सब ही देशोंमें राज्याधिकारी होनेकी आकांक्षा रखते हैं, उनको विशेष मान मर्यादा भी दी जाती है, पर शायद ही कहीं राजपुरुषों-का इतना माहात्म्य हो जितना हमारे देशमें है, शायद ही सरकारी नौकरी सबको इस प्रकारसे लुभाती हो जैसी हमें लुभाती है, शायद ही कहीं सभी लोग उसमें जानेके लिये इतने लालायित हों जितना भारतमें। कहीं पर इन्हें मान दिया जाता है, कहीं रुपया दिया जाता है, शक्ति तो इन्हें सब ही जगह अनिवार्य रूपसे मिलती ही है, पर ऐसी बात नहीं है कि इन्हींके हाथमें सब मान, सब शक्ति, सब धन केन्द्रीभूत हो और साथ ही इन्हें ऐसा आराम करनेके लिये, खेल तमाशे देखनेके लिये छुट्टी भी सदा मिलती रहे। यह सब भारतमें ही देख पड़ता है। विदेशी शासनका यह अपरि-हार्य रूप है। जनसाधारणपर अपना रोब रखनेके लिये विदेशी शासक ऐसा ही सदा अपने लिये करते हैं और अपने देशी कर्मचारियोंको भी उन्हें वही सुविधाएँ देनी पड़ती हैं जिससे वे अपने ही देशके दमनमें उनका साथ दें, उनके पास रहकर ही अपना हितसाधन कर सकें, और हर तरहसे विदेशियोंके हितमें अपना निजका हित तो देखें पर अपने देश और समाजके प्रति उदासीन हों। श्रेणी-दर-श्रेणी देखा जाय तो सरकारी नौकर अपने गैर-सरकारी भाईसे हर तरह अच्छा है और नई दिल्लीमें गाँवोंको नाशकर वायसरायका जो विशाल भवन बना है जो बड़ेसे बड़ोंको

आकर्षित करता रहता है, उससे लेकर गावोंके झोपड़ोंके बगलमें जो शानदार पक्की इमारत पुलीसके थानेके नामसे सब पड़ोसियोंके दिलोंको दहलाती रहती है, इनतक सब भारतके विदेशी शासन और साम्राज्यवादके द्योतक हैं, ये छोटे बड़े सब सरकारी अहलकारोंके महत्वको पुकार-पुकार सुनाते हैं और सरकारी और गैर-सरकारी आदमियोंमें, राज और देशमें भयंकर दूरी किये हुए हैं।

---

(२३)

भारतकी कानून व्यवस्था

आधुनिक कानूनकी व्यवस्था संसारको पुरातन रोम साम्राज्यकी देन है। थोड़ेमें इसका यह अर्थ है कि किसीको भी किसी प्रकारका दण्ड नहीं दिया जा सकता जबतक उसके ऊपर विधिपूर्वक वह जुर्म साबित न हो जिसके लिये दण्डकी आयोजना की गयी है। खुली अदालतमें पहले अभियोग लगाना जरूरी है, अभियुक्तको अपनी सफाई देनेका मौका देना जरूरी है। विचारपति यद्यपि सरकारी नौकर है तथापि वह स्वतंत्र समझा जाता है और गवर्मेंटके विरुद्ध भी वह निर्णय देनेका अधिकार रखता है। न्यायालयमें कानूनके सामने सब बराबर हैं, कोई कहीं भाग नहीं सकता, किसीके साथ पक्षपात नहीं हो सकता। अदालतोंका सर्वसाधारणके लिये खुला रहना, अदालतमें सबका बराबर पद रखना, अदालतोंमें सबको निर्भय होकर अपनी सफाई दे सकना, और बिना जुर्म साबित हुए किसीका भी दण्डित न हो सकना, ये कानूनकी व्यवस्थाकी विशेषताएँ हैं। सिद्धान्तरूपसे ये बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती हैं।

स्थूल दृष्टिसे ऐसा प्रतीत होता है कि अनाचार, अत्याचार इसके सामने हो ही नहीं सकता और सब लोग सुख और शान्तिमें इसकी छत्र-छायामें जीवन व्यतीत कर सकते हैं। पर केवल पुस्तकोंमें लिखित सिद्धान्तोंके निरूपणसे ही कोई बात नहीं समझी जा सकती। सिद्धान्त किस प्रकारसे व्यवहारमें लाया जाता है, उसका वास्तविक प्रभाव समाजपर कैसा पड़ता है, इसकी भी विवेचना कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। और देशोंमें चाहे कानूनका कुछ ही असर हुआ हो, भारतपर उसका जो प्रभाव पड़ा है उसे देखकर हमें तो यही कहना पड़ता है कि इंगलैंडकी भारतको सबसे बुरी और हानिकर देन उसकी कानूनकी व्यवस्था है। हम यह मानते हैं कि बहुतसे दुष्ट लोग कानूनके अस्तित्वको देखकर उससे भयभीत रहते हों और इस कारण अपनी दुष्ट प्रकृतिको रोके भी रहते हों, खुली अदालतोंमें फर्याद कर सकनेका अधिकार होनेसे अनाचारी कर्मचारियोंपर भी कुछ बंधन हो, तथापि जो वास्तवमें समाजपर कानूनका असर पड़ा है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि आज हमारे समाजकी दुर्दशा बहुत कुछ इसीके कारण है।

मनुष्य अकेला नहीं रह सकता। वह अन्य मनुष्योंका साथ खोजता है। जहाँ कई मनुष्य साथ रहेंगे वहाँ परस्परका झगड़ा होना भी अनिवार्य है। ऐसी अवस्थामें झगड़ोंके निबटारेका भी प्रबंध अवश्य ही मनुष्य करेगा। साधारणतः जिस प्रकारसे लड़के अपने झगड़े मा बापके पास निबटारेके लिये ले जाते हैं और उनका निर्णय मान लेते हैं, उसी प्रकार प्रौढ़ अपने झगड़े अपने पड़ोसमें बसे किसी वृद्धके पास ले जाते हैं या किसी गावके ऐसे व्यक्तिके पास जाते हैं जिनकी सत्यता, धार्मिकता, विश्वसनीयता, पक्षपातरहिततामें साधारण तौरसे लोगोंका विश्वास हो गया हो। जबतक

(२४)

कानूनका व्यावहारिक प्रभाव

भारतकी पुरानी परम्परा और समाज व्यवस्थाके अनुसार सब जातियों, वर्गों, पेशों, सम्प्रदायों आदिके पृथक पृथक रीति रस्म, आचार विचार थे। साधारणतः ये लिपिबद्ध नहीं थे। ये स्मृति द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते थे। इस सम्बन्धमें अधिकारी साम्प्रदायिक पुरोहितगण, जातीय पचायतें और उनके मुखिया, वृद्धगण और विशेष कारणोंसे विश्वास पात्र व्यक्तिविशेष थे। इन्हींके सामने निपटारा होता था। चाहे फौजदारी कानूनका मामला हो या दीवानी कानूनका मामला हो, चाहे प्रश्न व्यक्तिगत हो या समूहगत हो, चाहे समस्या कुटुम्बकी हो या धन और जमीनकी हो, इन्हीं अधिकारियोंके सामने जाता था और वहीं उसका निपटारा हो जाता था। जिसका मामला था, जो अभियोग लगाता था, वह स्वयं उसे पेश करता था। सरसरी तौरसे गवाही साखी लेकर, रीत रस्मोंकी कसौटीपर कस कर मामला तय हो जाता था। जो कुछ दण्ड देना होता था वहां दे दिया जाता था। छोटेसे जुर्मानेसे लेकर जाति निकालने तककी सजा दी जा सकती थी। धन, जमीन, कुटुम्ब आदिके सम्बन्धमें जो निर्णय किया जाता था वह सबपर मान्य होता था। ऐसे प्रकारमें झूठकी गुंजाइश कम होती थी क्योंकि सब ही सबका हाल जानते थे, किसी बाहरी अज्ञातके सामने मामला जाता नहीं था, मामलेको सुनने, उसे पेश करने आदिका कोई पेशा नहीं जिससे आर्थिक लाभ होता हो, किसीका इसमें हित नहीं कि मामला तूल पकड़े या बहुत दिनों तक चले। सच्ची सच्ची बात जल्दी जल्दी कही जाती थी, निर्णय फौरन ही होता था, जो दण्ड दिया गया वह मान्य होता

था, और जीवनका प्रवाह पहलेकी ही तरह फौरन चलने लगता था।

ऐसे समाजपर नये प्रकारकी कानून व्यवस्था लादी गयी। राजने सब मामले अपने हाथमें ले लिये। यदि फौजदारी मामलेमें कोई पंचायती तरीकेसे तसफीया करावे तो उसकी आफत हो जाय। वह स्वयं दण्डित हो सकता है। इन सब मामलों पर राजने अपना अधिकार जमाया। उदाहरणार्थ चोरीका मामला ले लीजिए। जिसकी चोरी हुई। वह चुप रह जाना चाहता है, झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहता। वह स्वतः जुर्म हो गया। प्रजाका कर्तव्य है कि चोरीकी इत्तिला पुलीसको दे। नहीं देता तो उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है कि उसने चोरी छिपाई। मान लीजिए चोरी करता हुआ चोर पकड़ गया। पकड़नेवाला उसे दण्ड स्वयं नहीं दे सकता। यथासम्भव कम बल-प्रयोगकर उसे पकड़कर थाने ले जाना चाहिए। कहीं स्वयं दण्ड देकर, अपनी चीज छीनकर चोरको कोई छोड़ दे तो भी जुर्म हो जाता है। मान लीजिए चोरका पीछे पता लगा और किसी पंचने चोर और जिनकी चोरी हुई उनका समझौता करा दिया, चीज वापस करा दी और सब मामलेको शान्त कर दिया। ऐसी अवस्थामें तीनों दण्डके भागी हो जाते हैं। साराश यह कि ऐसे मामलोंको राजके सामने जाना ही होगा, वहींसे उसका निर्णय होगा, वहींसे दण्ड दिया जायगा, चाहे व्यक्तिविशेषका इसमें चोरी गयी चीजके दामसे कितना ही अधिक व्यय हो जाय, चाहे उसे अपने घरसे बार बार कोसियों कोस अदालतमें हर अतरे दिन जाना पड़े। दीवानी मामलोंमें इतनी सख्ती नहीं है। उसमें आपसका समझौता हो सकता है, पंच इसमें मदद दे सकते हैं। पर फौजदारी कानूनके तौर-तरीकेने ऐसा प्रभाव हम पर डाला है—और हम अब तक भी

फ़ौजदारी और दीवानी कानूनके अन्तर की बारीकी नहीं समझ पाये हैं क्योंकि सब ही मामलोंको हम व्यक्तिगत ही मानते रहे हैं— कि जो तरीका फ़ौजदारीमें अनिवार्य है उसीको दीवानीमें स्वेच्छासे बरतने लगे हैं, और जो आशा और निराशाके भावोंका आस्वादन हम फौजदारी मामलोंमें पानेके अभ्यस्त हो गये हैं, उन्हें हम प्रसन्नतापूर्वक दीवानी मामलोंमें भी अनुभव करनेके लिये लालायित से देख पड़ते हैं।

सब मामलोंको अनुसंधान करने, निर्णय करने, कार्यान्वित करनेके लिये राजकी तरफसे कर्मचारी नियुक्त हैं। साथ ही सब-कार्योंकी विधि तफसीलसे बतलायी हुई है। कानून तो जटिल है ही, उसका तरीका उससे भी जटिल है। साधारण मनुष्य कदापि अपना मामला बिना किसी जानकारकी सहायताके एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकता। इस कारण कानूनका बड़ा भारी पेशा तयार हो गया है। बहुतसे लोग नाना प्रकार से गैर-सरकारी हैसियतसे कानूनके काममें लग गये हैं। शहरोंमें वकील-मुख्तार हैं, उनके मुहर्रिर, मुंशी, लेखक आदि हैं। फिर कानूनी मामलोंके नानाप्रकारके दलाल गाँव गाँवमें हैं। इस भयानक गरोहका एक मात्र उद्देश्य यही है कि कोई मामला निजी तौरसे आपसमें तसफ़ीया न होने पावे। सब मामले हमारे द्वारा अदालतोंमें जायं यद्यपि शायद ही वकील खुद अपने निजी मामलोंको अदालतोंमें ले जाते हैं। वकील स्वयंवादी प्रतिवादीके रूपमें शायद ही कभी देख पड़ते हैं। गवाही देनेसे भी यह बड़ा परहेज करते हैं। पर दूसरोंके लिये व्यर्थके भी नये नये मामले ये पैदा करते रहते हैं। चूंकि अदालती पेशे राज द्वारा माने हुए हैं इससे इस तरीकेमें आर्थिक लाभ है जो इस गरोहमें बटता है। हर एक आदमीको किसी न किसी बहाने अदालतमें पहुंचनेके लिये सदा तयार रहना

पड़ता है। शान्तिप्रिय लोग इस भयमें रहते हैं कि यदि फौजदारीके राज कर्मचारी पुलीस आदि हमसे प्रसन्न न रहें तो हमें किसी मामलेमें फंसा देंगे और हमे बाहर निकलनेका कोई मौका न रहेगा जबतक कि बहुत व्यय करने और बहुत कष्ट उठानेको न तयार रहें। दुष्ट प्रकृतिके लोग शान्तिप्रिय लोगोंके इस भावका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें नाना प्रकारके भय दिखलाते रहते हैं और उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। शान्तिप्रिय पुरुष इस भयमें भी रहता है कि हमारा पड़ोसी या कोई भी व्यक्ति हमें दीवानी कानूनके दॉव पेंचसे फंसा देगा और हम अपने मामलेकी सुनवाई किसी पंचके सामने भी न करा सकेंगे। दुष्ट प्रकृतिके लोग यह जानकर कि पंचोंका अब कोई जोर नहीं रह गया है, किसीको तग करने या उससे पैसा ऐंठनेके उद्देश्यसे उसके ऊपर कोई दीवानी ही मामला चलवा देते हैं जो बरसों घसिटता रहता है और अंतमें परिणाम यह होता है कि जीतने वाला भी नष्ट हो जाता है। फौजदारी और दीवानी कानून, अदालत और तत्संबंधी कर्मचारी, हमारे पीछे एक न एक रूपमें सदा ही लगे रहते हैं, अकसर लोग इनके शिकार होते हैं, कुछ इनसे फायदा करते हैं, पर इसमें संदेह नहीं कि भारतीय समाजने कानूनके कारण एक अजब रूप धारण किया है और इसके शिकंजेने ऐसा सबको जकड़ रखा है कि चारो तरफ त्राहि त्राहि मची है, सज्जन त्रस्त हैं, दुर्जनोंका बोलबाला है।

---

(२५)
भारतकी अदालतें

भारतमें नाना प्रकारकी अदालतें हैं। फौजदारी अदालतोंमें संभवतः सबसे छोटी अदालतें अवैतनिक मजिस्ट्रेटोंकी हैं जो नगरोंमें निर्धारित

हो, इनसे दण्ड दिला दे। इससे अधिक सुन्दर, सरल, संतोषजनक और कौन पद्धति हो सकती थी। जब समाज अव्यवस्थित है तब इसके द्वारा व्यवस्था होती है, जब किसी बातका भय है तो इसके द्वारा अभयदान मिलता है, जब कोई उद्दण्डता करता है तो उसका दमन हो सकता है। जब गरीब अमीर, सबल दुर्बल, विद्वान मूर्ख सब अदालतके *सामने बराबर हैं तब तो मनुष्यके अभीष्टकी सिद्धि स्वतः हो गयी।* पर सिद्धान्तोंके प्रतिपादन मात्रसे काम नहीं चल सकता। वास्तवमें क्या बात है, यह देखना होगा। वास्तवमें अदालतोंने हमारे देशमें शान्ति नहीं कायम की है। बड़े बड़े नगरोंके पड़ोससे हटकर जहाँ कोई ग्रामोंके भीतर घुसता है तो यही पाता है कि अभीतक दण्डे चल रहे हैं, प्राकृतिक प्रकारोंसे ही मनुष्य मनुष्य अपने झगड़ोंका निवारण करते हैं, और जो इसके लिये तयार नहीं है उसके लिये कोई गुंजाइश भी नहीं है। हाँ, अदालतोंके बगलमें मौजूद रहनेसे झूठ और कायरता अवश्य आगयी। अपने कियेके परिणामोंसे बचनेके लिये जो गाँवकी पंचायतोंके सामने नहीं हो सकता, पुलिसवालोंको घूस दिया जाता है और झूठे गवाह तयार किये जाते हैं। अगर किसीको किसीसे बुराई रहती है तो झूठे मुकदमे तयार किये जाते हैं। पेशावर वकील सब स्थानोंमें मौजूद रहते हैं। ये सब प्रकारके मुकदमे पैसा लेकर करनेको तयार रहते हैं। अदालतें भी खुली रहती हैं। गाँवका पैसा शहरमें जाने लगता है, गाँवके लोग भी शहरोंमें आकर्षित होने लगते हैं। कानूनकी विधियाँ बड़ी जटिल होती हैं। नाना प्रकारकी दरख्वास्तें देनी होती हैं। स्थान स्थानपर टिकट लगाना होता है। पग पगपर पैसा देना होता है। मुकदमेकी सुनवाईमें बड़ी देर लगती है। कभी अदालतके हाकिमको छुट्टी नहीं रहती, कभी वकील दूसरी जगह

फँसे रहते हैं, कभी गवाह नहीं आते। जहाँ मुकदमा अदालतमें गया, वहाँ यह पता नहीं रहता कि यह कब खतम होगा और इसमें कितना रुपया लग जायगा और कितनी परेशानी उठानी पड़ेगी।

यद्यपि खर्चकी मात्रा बँधी रहती है, पर वकीलोंको फीसों, अमलोंको सन्तुष्ट करनेकी रकमों, सफरके अपव्ययों, घरके कामकी हानियोंका कोई ठेकाना नहीं रहता। एक बार जो अदालतमें गया वह वहाँके फन्दोंसे कब और कैसे निकलेगा यह कोई नहीं कह सकता। बहुत दिनोंके —अकसर बरसोंके —बाद अगर अपने पक्षमें ही अन्तिम निर्णय हो तो भी प्रायः वह निरर्थक ही सिद्ध होता है, वास्तविक उद्देश्य सब लुप्त हो जाता है। बहुतसे लोगोंको अदालतोंमें तमाशा देखनेका मजा आता है। वे जीवित जाग्रत नाटक देखकर प्रसन्न होते हैं। हाकिमोंकी डाँट फटकार, वकीलोंका बकना झकना, अमलोंकी चालाकियाँ, चपरासियोंकी पुकार, इधर उधरकी दौड़-धूप, रोना-पीटना, जीतना-हारना, इन सबके कारण अदालतें अजब मजा बहुतसे लोगोंको देने लगी हैं। अदालत देशका बड़ा भारी रोजगार हो गया है। पर उसका मौलिक सिद्धान्त और मौलिक उद्देश्य हमारे देशमें सब गायब है। यदि हमें पग पगपर नाना प्रकारके कानून घेरे न रहते और उनसे हम सदा भयभीत न रखे जाते और यदि अदालतोंद्वारा हमें अपना हक वास्तवमें और केवल कागजपर ही नहीं, दिलाया जाता तो भी हमें कुछ संतोष होता। उदाहरणार्थ यदि चोरको केवल दण्ड ही न दिया जाता और उसपर किया हुआ जुर्माना राज अपने ही पास न रख लेता पर जिसकी चोरी हुई है उसको पूरा मुआवजा देनेका राज जिम्मेदार होता, यदि केवल सूखी डिगरी ही वादीको न मिलती पर राज स्वयं डिगरीकी पूरी रकम प्रतिवादीसे दिलानेका जिम्मेदार होता, तो भी हम सन्तुष्ट होते और

समझने कि जो खर्च और परेशानी हमें उठानी पड़ती है वह निरर्थक नहीं है। यदि यह प्रबंध होता कि जब कभी कोई ऊपरकी अदालत नीचेकी अदालतके विरुद्ध निर्णय करती है या यह देखती है कि नीचेकी अदालतने अन्याय किया तो नीचेके न्यायाधीशको भी सजा होती और अपीलका खर्च उससे ही दिलाया जाता, तो भी कानूनकी व्यवस्थाका पर्याप्त आदर हो सकता और उसकी उपयोगिता भी बढ़ सकती थी। यदि न्याय शीघ्रतासे किया जाता और अदालतोंमें अपव्यय न होता, यदि उसकी विधि इतनी पेचीली न होती और बेईमानीकी गुञ्जाइश न रहती तो अवश्य कानून व्यवस्था उपयोगी और प्रशंसनीय होती। पर जब अदालत सर्वथा सुरक्षित है, उनकी टीका टिप्पणी सर्वथा वर्ज्य और दण्डनीय तक है, जब राजकी तरफसे कानून लादा भर जाता है और हर हालतमें हर बातकी जिम्मेदारी प्रजाकी ही रहती है, तब यह सब प्रबंध हमारे हितका नहीं अहितका ही साधन हो गया है। इसमें मूलसे सुधार और परिवर्तनकी आवश्यकता है। वास्तवमें जो व्यवस्था सार्वजनिक लाभ और व्यक्तिगत सुविधाके लिये कायम हुई थी वह आज हमारे नैतिक और आध्यात्मिक अधःपतनका मूल साधन हो गयी।

---

(२६)

भारतके शिक्षालय

प्रजाको समुचित शिक्षा देना आजकल राजका बहुत बड़ा कर्तव्य समझा जाता है। अनिवार्य रूपसे सब बालक बालिकाओंको अक्षरज्ञान तो देना राजके लिये अत्यावश्यक है। भारतकी नयी शिक्षाप्रणालीकी विशेषता

यह रही है कि यह नीचेसे न चलकर ऊपरसे चली है, सर्वसाधारणको अक्षरज्ञान देनेका दूसरा उद्देश्य कम, और थोड़ेसे लोगोंको उच्चशिक्षा देनेकी अभिलाषा इसे अधिक रही है। शिक्षालय बहुत प्रकारके देख पड़ते हैं। कुछ बड़े शहरोंमें विस्तृत और बहुमूल्य भवनोंमें विश्वविद्यालय स्थापित हैं। यहाँपर थोड़ेसे नवयुवक बहुव्यय कर उच्च-शिक्षा प्राप्त करते हैं। भिन्न-भिन्न विषयोंमें विशेष ज्ञान प्राप्त करनेका यहाँ वे प्रयत्न करते हैं। इन विश्वविद्यालयोंमें बड़े-बड़े पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, वेधालय आदि भी हैं। इनके अतिरिक्त शहर शहरमें हम विद्यालय और पाठशालाएँ देखते हैं। यहाँपर बहुतसे स्थानीय विद्यार्थी विश्वविद्यालयके नीचे पर उसमें जानेके योग्य बनानेवाली शिक्षा पाते हैं। इनके भी भवन अच्छे अच्छे, बड़े-बड़े होते हैं। इनके नीचे प्रारंभिक शिक्षाकी भी आयोजना है। प्रारंभिक पाठशालाओंकी योजना शहरोंके कितने ही मुहल्लों और गावोंकी बस्तियोंमें हमें देख पड़ती है। इन सबमें अधिकतर साहित्यिक शिक्षा दी जाती है जिसमें दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि ज्ञानकी शाखाएँ अन्तर्गत हैं। औद्योगिक शिक्षाका बहुत ही कम प्रबंध है। कुछ चिकित्साशास्त्रके अध्ययनका प्रबंध है, कहीं कहीं कुछ व्यवसाय भी सिखलाये जाते हैं पर विस्तृत रूपसे समाजके औद्योगिक जीवनमें लाभ लेने योग्य शिक्षार्थियोंको बनानेका कोई प्रबंध नहीं देख पड़ता। जो शिक्षालय हैं इनपर बहुत व्यय होता है, इनकी इमारतें और बड़े बड़े शिक्षकोंके वेतन बहुत-सा धन खा जाते हैं, शिक्षार्थी जो शुल्क देते हैं उससे बहुत कम काम चलता है। अधिकतर धन गवर्मेंटसे ही मिलता है या बाहरी चन्दोंसे आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सर्वसाधारणपर ही इन शिक्षालयोंका व्ययभार भी पूरी तरह पड़ता है।

यद्यपि सर्वसाधारण ही चाहे गवर्मेंटी करके रूपमें चाहे चन्देके रूपमें शिक्षालयोंका भार वहन करते हैं पर उन्हें इन शिक्षालयोंसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिलता। जैसी योजना है उसमें बहुत कम लोग शिक्षा पा सकते हैं। हमारे देशमें ८०।९० प्रतिशत लोग तो अक्षरज्ञान भी नहीं रखते। कुछ लोग माध्यमिक कक्षाओंकी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और बहुत थोड़ेसे लोग उच्चशिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। इस शिक्षाका मजा यह है कि जो इसमें पड़ते हैं वे अपने घरका काम करने योग्य नहीं रहते। यह शिक्षा बहुत ही अव्यवहार्य है और अधिकतर यह हमें इसी कामका बना पाती है कि हम या तो अदालत सम्बन्धी कोई पेशा उठालें या किसी प्रकारकी नौकरी करें। उच्च शिक्षा प्राप्त लोग या तो वकील बनते हैं या सरकारी नौकरी करते हैं। न्यूनाधिक स्तर अधिक और न्यून शिक्षाप्राप्त लोग नहीं या छोटी नौकरी या अदालती काममें लगते हैं। उत्तमोत्तम विद्यार्थी पहले ऊँची सरकारी नौकरीके ही फेरमें पड़ते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सर्वसाधारणको ज्ञानहीन और धनहीन रखकर उन्हींके खर्चसे जो शिक्षा हमने पायी है उसके द्वारा उन्हींपर हुकूमत करने या नाना प्रकारसे उन्हें ही लूटनेकी हमारी सबसे अधिक अभिलाषा सदा रहती है। यह हमारी शिक्षाका आजका आदर्श है। जिस स्थितिमें नवीन शिक्षा देनेकी आयोजना हमारे देशमें की गयी और जिस उद्देश्यसे यह की गयी, उसके यह सर्वथा अनुकूल भी है। विदेशी शासकोंको अपने शासनप्रबन्धके लिये और अपनी कानूनी व्यवस्थाको सुचारुरूपसे चलानेके लिये देशी सहायकोंकी आवश्यकता थी। देशी लोगोंको भी नये शासकोंको सहायता देना, उनके द्वारा अपना निजी लाभ उठाना, अभीष्ट था। ऐसी अवस्थामें योग्यतम भारतवासी—विशेषकर हिन्दुओंकी उच्च जातियोंके सदस्य—

विदेशी शिक्षासे लाभ उठाने लगे–और उसमें प्रवीण होकर अंगरेजी शासनमें सहायता देने लगे और अपना आर्थिक लाभ भी अच्छी तरह करने लगे।

– शिक्षाका प्रधान उद्देश्य यही होता है और हो सकता है कि व्यक्ति संसार यात्राके लिये समाजमें उपयुक्त स्थान प्राप्त कर सके। जन्तु भी अपनी संततिको उचित शिक्षा देता है जिससे वह आत्मरक्षा कर सके, भोजन प्राप्त कर सके और अपने समाज विशेषमें रह सके। मनुष्य भी यही करता है। वह भी यही चाहता है कि हमें ठीक तरहसे रोजगार मिल जाय। पर बुद्धिमान होनेके कारण, अथवा यों कहिए उसमें मस्तिष्कका विशेष विकास होनेके कारण शिक्षाद्वारा वह रोजगारके साथ साथ यथासंभव अधिकतम ज्ञान भी प्राप्त करना चाहता है चाहे उससे व्यावहारिक लाभ न भी होता हो, और वह समाजमें शिष्टता और परस्पर सहयोगके साथ भी रहना चाहता है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्यके लिये शिक्षाका उद्देश्य हुआ ज्ञानकी प्राप्ति, शिष्टताकी प्राप्ति और उपयुक्त रोजगारकी प्राप्ति। बहुव्यय करके हमें आज जो शिक्षा दी जा रही है, जिसमें व्यक्तिगत और सामूहिक धन अनन्त मात्रामें खर्च होता है, जिसको प्राप्त करनेमें कितने ही युवकोंका स्वास्थ्य और शक्ति सब क्षीण हो जाती है, वह इन तीनों उद्देश्योंको सिद्ध करनेमें असमर्थ हो रही है। इसकी दूषित परम्पराके कारण इस समय भी उच्च शिक्षाकी ही तरफ अधिक ध्यान है और इसे प्राप्त कर जो निकलते हैं वे सरकारी नौकरी ही ढूँढ़ते हैं, अपने भाइयोंसे पृथक होकर विदेशी शासकोंको इनपर राज करनेमें सहायता देते हैं। कुछने अपनी नैसर्गिक बुद्धि और अध्यवसायके कारण ज्ञानराशि भी इकट्ठा की, कुछने देशी विदेशी शिष्टताका अपनेमें

कोई संकोच नहीं था। ये बहुत जल्दी इसे ग्रहण भी कर लेते थे। जिन लोगोंने अँगरेजी साहित्यादि पढ़ा, उन्हें राजकाजमें और शासकोंसे संपर्क बनाये रहनेमें सुहूलियत तो हुई ही, साथ ही उनके सम्मुख नयी नयी विचार धाराएँ भी बहने लगीं। अँगरेजोंके सुन्दर साहित्यने इनके हृदयोंमें नयी भावनाएँ पैदा कीं, अँगरेजोंके इतिहास, राजशास्त्र आदिने अद्भुत क्रान्ति इनके मस्तिष्कोंमें कर डाली। इन्हें संसार और विशेषकर अपना देश नये रूपमें देख पड़ने लगा। साथ ही इनके द्वारा विद्याप्रेमी अँगरेजों-का सम्पर्क हमारे पुरातन साहित्यसे भी होने लगा और वे भी हमारी पुरानी सभ्यता आदि की झलक पाकर आश्चर्य करने लगे। यदि कुछ अँगरेज यह समझते थे कि अँगरेजी शिक्षाद्वारा भारतीय हमारे आर्थिक ही नहीं आध्यात्मिक दास भी हो जायंगे, तो कुछको यह भी ख्याल था कि हमारे साहित्यका पानकर हमारी ही तरहका जीवन व्यतीत करनेकी लालसा भारतीयोंको भी हो जायगी और उनमें देशभक्तिका संचार होगा और वे स्वतन्त्रताके लिये अग्रसर होंगे।

जिस देशके वातावरणमें ही जातिभेद और वर्णभेदका संस्कार भरा हुआ है, उसमें अँगरेजी पढ़े लिखोंकी भी अलगसे एक जाति या वर्ग पैदा हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। ऐसाही हुआ भी। पुराने प्रकारके वर्ग तो थे ही उसपर नये नये वर्ग ब[illegible] लगे और अजब सामाजिक अव्यवस्था आरंभ हो गयी। कुछ भारतीय जो सर्वथा अँगरेजी प्रकारोंके गुलाम हो गये, अपने जीवनमें अँगरेजी रहन सहनकी ऐसी नकल करने लगे कि उन्होंने अपनेको बिलकुल ही भारतीय समाजसे पृथक कर लिया। ये अँगरेजोंमें ही अपना साथ खोजने लगे और उसे न पाकर अँगरेजोंसे असंतुष्ट होकर अपना सुदृढ़ वर्ग अलगसे बनाने लगे।

मुसलमान राज्यके बाद अँगरेजी राज्य भारतमें आया क्योंकि बीचका हिन्दू राज्य न दृढ़ हो सका, न विस्तृत हो पाया।

भारतीय समाज अंगरेज और अंगरेजीके प्रभावके कारण बड़ी शीघ्रतासे परिवर्तित होता गया। नये नये पेशे जिनका कोई महत्व पहले नहीं था, बड़े गौरवयुक्त हो गये, समाजका नया विभाजन होने लगा, नये नये विचार फैलने लगे और जो लोग अंगरेजीसे लाभ न उठा सके उनका स्थान नीचे होने लगा। व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे राग द्वेष पैदा होने लगा जिसका परिणाम समाजके विकासपर बहुत ही खराब हुआ। मुसलमान भी अन्योंके साथ साथ आगे चलकर इसी निर्णयपर पहुँचे कि अंगरेजी राज्य अपरिहार्य है। अंगरेज देशका शासन करने स्थायी-रूपसे आये हैं। इन्हींका साथ करनेमें हमारा कल्याण है। सरकारके साथ देनेवालोंका महत्व, शान, धन आदि देखकर सबकी यही इच्छा हुई कि हम भी ऐसे ही हों। सामूहिक और साम्प्रदायिक संगठन इस उद्देश्यसे कायम हुए कि हमारे समुदायविशेषको सरकारी नौकरीमें सुविधा दी जाय, अंगरेजीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें सहायता दी जाय। सबने विदेशी गवर्मेंट-के सामने अपनी माँगे पेश कीं। ये समुदाय उन लोगोंसे बुरा मानने लगे, जो पहलेसे ही अंगरेजी राज्यमें लाभ उठा रहे थे। हिन्दुओंकी उच्च जातियों-के विरुद्ध भयानक रोष और द्वेषकी अग्नि चारों ओर भभक उठी क्योंकि इन्होंने ही नयी शिक्षा और नयी स्थितिसे सबसे अधिक लाभ उठाया था। साथ ही स्वतंत्रताका भी झंडा इन्होंने ही बुलन्द किया था, अंगरेजी प्रभावोंके विरुद्ध भी इन्होंने ही आंदोलन किया था। परम्परासे विद्याकी उपासना करते आनेके कारण हर प्रकारसे ये लोग अगुआ थे, शासनमें भी इनका उच्चस्थान था, राष्ट्रीय आंदोलनोंमें भी ये आगे थे, शासकोंके विरोध

और समर्थन दोनोंमें ये नेता थे, विदेशी प्रकारोंका अनुसरण करनेमें और उनका घोर तिरस्कार करनेमें भी ये ही प्रवीण थे। तथापि मनुष्यकी प्रवृत्ति जैसी होती है उसे देखते हुए यह भी स्वाभाविक ही था कि ऊँची आकांक्षा रखनेवाले, सांसारिक उन्नति चाहनेवाले दूसरे सब ही इनसे बुरा मानें और इन्हींको सब खराबियोंके लिये दोष दें।

---

(२९)

नये वर्ग और नयी आकांक्षा

नये प्रकारकी शिक्षा पाये लोग विदेशी शासनके ही आश्रयमें दौड़ते थे। उनकी शिक्षा ही ऐसी थी कि उसी शासनसंबंधी कार्योंमें लगायी जा सकती थी और उससे सम्पर्क रखनेवाले पेशोंमें ही काम आ सकती थी। जबतक इनकी संख्या कम थी तबतक तो सब ही शिक्षित लोगोंको उपयुक्त काम मिल जाता था, उनको धन भी पर्याप्त मिलता था, उनको यश, मान-मर्यादा और अधिकार भी काफी था। ऐसी स्थिति देखकर अधिकाधिक लोग इस शिक्षाकी तरफ आकर्षित होने लगे और सबको ही यह आशा हुई कि हमें भी ऐसा ही ओहदा और गौरव मिलेगा। जो लोग स्वयं लाभ उठा रहे थे वे तो अपने पुत्रों, रिश्तेदारों और आश्रितजनोंको इसी तरफ भेजते थे। सरकारी नौकरी और अदालती कामोंमें एक तरफ तो अधिकतम लाभ ही लाभ था और दूसरी तरफ उसके कारण समाजमें भी विशेष पद मिलता था। ऐसी अवस्थामें यदि इसका लोभ फैला तो कोई आश्चर्य नहीं। आरंभमें हिन्दुओंकी उच्च जातियोंने ही नयी स्थितिसे लाभ उठाया था। पर इनकी सफलताको देखकर और लोग भी आकर्षित

होने लगे जिसका कई प्रकारका प्रभाव समाजपर पड़ा। एक तो इस शिक्षाने ही लोगोंको उद्योग-धंधों, व्यापार-व्यवसायके लिये अयोग्य कर दिया। साथ ही सरकारी और अदालती कामोंका इतना महत्व हो गया कि समाजके और अङ्गोंकी तरफ उपेक्षा होने लगी। बाकी सब काम हलका या छोटा समझा जाने लगा। प्रायः सब ही महत्वाकांक्षी और योग्यतम लोग सरकारी कामोंकी तरफ दौड़े, देशके भिन्न-भिन्न अङ्गोंको दृढ़ करनेका काम अपेक्षाकृत कम योग्यतावाले लोगोंके जिम्मे पड़ा जिनका समाजमें उपयुक्त पद भी न था। देशके जीवनके सब आवश्यक अङ्ग कमजोर पड़ने लगे और एक गैर-जरूरी अङ्गने कृत्रिम गौरव प्राप्त कर लिया।

जिन लोगोंने, गरोहोंने, समुदायोंने पहले अंगरेजी शिक्षासे लाभ नहीं उठाया था और अब यह अनुभव करने लगे कि शासनमें भाग न ले सकनेके कारण हमारा समाजमें उचित स्थान ही नहीं रह गया है, उन्होंने जातिगत नये-नये संघटन कायम किये जिनका साधारणतः उद्देश्य यह प्रचार करना था कि हमारी जातिविशेष किसी समय बड़े महत्व की थी पर आज उसकी बड़ी ही हीन-दीन दशा हो गयी है अतः गवर्मेंट हमारी सहायता करे, हमारी शिक्षाका विशेष प्रबन्ध करे, और राज्यमें हमें उपयुक्त स्थान दे। इस सबका मतलब यह था कि इन जातियों और गरोहोंका गौरव स्वीकार किया जाय, सर्वसाधारणके व्ययसे इन्हें विशेष प्रयत्नके साथ शिक्षा दी जाय, और शिक्षाके अन्तमें इन्हें सरकारी नौकरी मिल जाय। जाति-जातिमें इस प्रकारसे सरकारी नौकरियोंके लिये होड़ हो गयी और भीषण सामाजिक स्थिति पैदा हुई जब छोटे-छोटे वर्गोंमें संघटित होनेके कारण राष्ट्रीय दृष्टिसे सामाजिक विघटन होने

लगा। हिन्दुओंकी भिन्न-भिन्न जातियोंमें जो परस्परकी प्रतिद्वन्द्विता इस कारण पैदा हो गयी उससे हिन्दू-समाज और भी क्षीण होने लगा। वर्णों और उपवर्णोंके कारण तो यह समाज यों ही जर्जर था, अब नये वर्गोंके उपस्थित हो जानेके कारण और विदेशी शासकोंके प्रियपात्र बननेकी आकांक्षाने इनमें आपसका और भी मनोमालिन्य पैदा कर दिया।

मुसलमानोंका भी भाव बदला। इनके नेताओंने भी अनुभव किया कि विदेशी शासकोंसे असहयोग करनेसे कोई लाभ नहीं, उलटे हानि ही हानि है। यदि हम अपनेको शासनसे अलग रखेंगे तो हमारी दिन प्रति-दिन अवनति ही होती जायगी और दूसरे लोगोंका इतना महत्व बढ़ जायगा कि हमारा कुछ दिनोंमें पता ही नहीं रह जायगा। यह ऐसा समय था जब अंगरेज शासकोंको यह अनुभव होने लगा कि हिन्दुओंका महत्व बहुत बढ़ गया है और इसे रोकनेके लिये दूसरोंको आगे करना जरूरी है। मुसलमानोंके नये भावोंके कारण इनसे अच्छी मदद मिली। उच्च-जातिके हिन्दुओंसे बुरा माननेवाले निम्न श्रेणीके हिन्दू, और मुसलमान दोनोंमें परस्परकी सहानुभूति भी हो गयी और सरकारी नौकरियों और व्यवस्थापक सभाओंमेंसे उच्च श्रेणीके हिन्दुओंका गौरव कम करने और दूसरोंका बढ़ानेका खुली तौरसे प्रयत्न होने लगा। साथ ही सरकारी नौक-रियोंके इच्छुक इतने अधिक हो गये कि प्रतिद्वन्द्वात्मक परीक्षाओंसे नौकरी देनेका प्रबन्ध होने लगा और इसमें विशेष गरोहोंके सदस्योंके समावेशके लिये विशेष प्रबन्ध भी हुआ। इस प्रकारसे उन लोगोंकी शक्ति क्षीण हुई जिनका पहले इन पदोंपर एक प्रकारसे अनन्याधिकार था। बीसवीं शताब्दीके आरम्भका यही दृश्य था। यदि कानूनकी नयी व्यवस्थासे हमारा नैतिक और आध्यात्मिक सर्वनाश हुआ, तो शिक्षाकी नयी पद्धतिसे

हमारा आर्थिक और सांस्कृतिक सर्वनाश हो गया। वाणिज्य, व्यापार और व्यवसायके योग्य इसने हमें *नहीं* बनाया, और, जिस कामके योग्य बनाया उसमें इसने ऐसी प्रतिद्वन्द्विता पैदा कर दी कि सामुदायिक, साम्प्रदायिक और नाना प्रकारके व्यक्तिगत और जातिगत रागद्वेषके कारण सामाजिक और राजनीतिक विघटनका ही दृश्य चारों तरफ देख पड़ने लगा।

---

(३०)

जीवनके नये प्रकार

विदेशी शासनकी, खासकर जब यह साम्राज्यवादका रूप ले लेता है, यह *अनिवार्य और अपरिहार्य विशेषता होती है कि उसके प्रतिनिधिगण विजित लोगोंके बीचमें बड़ा कृत्रिम जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें अप्राकृतिक प्रकारोंसे* रहना पड़ता है। उन्हें अत्यधिक शान करनी पड़ती है। बहुत अपव्यय कर अपने चारों तरफ बड़े लाव लश्करका आयोजन करना पड़ता है। इससे उनके प्रति जनसाधारणमें बड़े मान और बड़े भयका भाव बना रहता है। इस सब अपव्ययके लिये उन्हें धन प्रजासे ही लेना होता है। यह सब नाना प्रकारके करोंके द्वारा एकत्र होता है। करोंके सम्बधमें पुरातन भारतीय विचार यह था कि जिस प्रकार सूर्य पृथ्वीसे पानीको अपने तेज द्वारा खींचता है और फिर पृथ्वीको ही सींचनेके लिये वर्षाके रूपमें उसे वापस कर देता है, उसी प्रकार राजा अपनी शक्तिसे प्रजासे कर लेता है और उसीके उपकारके लिये उसे वापस कर देता है अर्थात् प्रजाके ही हितके लिये उसे व्यय करता है। यूरोपीय विचार यह रहा कि बिना

प्रतिनिधित्वके कर नहीं लगाया जा सकता अर्थात् प्रजाके प्रतिनिधियोंकी अनुमतिसे ही कर लग सकता है जिसके अन्तर्गत यह विचार है कि यदि यह प्रजाके ही हितके लिये न लगाया जायगा तो उसके प्रतिनिधि अनुमति ही न देंगे और न वे प्रजाके सामर्थ्यसे बहुत अधिक कर लगाने देंगे। पर भारतमें प्रजाके सामर्थ्यसे बहुत अधिक कर लगा हुआ है और करसे प्राप्त धनका बहुत थोड़ा अंश प्रजाके काममें आता है, उसमें से अधिकतम सरकारी नौकरों अर्थात् शासकोंके निजकी शानको स्थापित करनेमें ही खर्च होता है और इस प्रकार राजका विशेष महत्व हमारे देशमें सदा दर्शाया जाता है।

राजाका प्रभाव प्रजा पर अनिवार्यरूपसे पड़ा करता है। समाजमें जो सम्पन्न, प्रभावशाली लोग रहते हैं वे शासकोंके सम्पर्ककी सदा लालसा रखते हैं और उनके पास आते जाते रहनेका प्रयत्न करते रहते हैं। शासकोंकी नकल करनेकी भी अभिलाषा लोगोंके मनमें होती है। अपनेसे जिसे जो श्रेष्ठ मानता है उसकी ही तरह वह बात करने, कपड़ा पहनने खेल खेलने आदिकी इच्छा करने लगता है। रहन सहनमें हर तरहसे राजाकी नकल होने लगती है। जो जितना कर सकता है करता है। साम्राज्यवादसे प्रभावित, अपनी शान बनाये रखनेके लिये, विजित जातिको अपना ऐश्वर्य दिखानेके लिये, अंगरेज भारतमें इस प्रकारसे रहने लगे जिसका स्वप्नमें भी वे अपने घर पर विचार नहीं कर सकते थे। जो भारतीय इनके सम्पर्कमें आये वे भी अपने सामर्थ्य भर इनकी तरह रहनेका प्रयत्न करने लगे। इन भारतीयोंके बांधव मित्रादि भी देखादेखी इन्हींकी तरह रहनेका आयोजन करने लगे। पानीमें ढेला फेंकनेसे जिस प्रकार उत्तरोत्तर लहरोंका गोलाकार बढ़ता जाता है उसी प्रकार केन्द्रमें

बैठे हुए अंगरेज शासकके आचार व्यवहारको देखकर अधिकाधिक भारतीय उसी तरह अपना जीवन भी बनाने लगे। अंगरेज शासक भी कई श्रेणीके हैं। उच्चकोटिमें भारतके बड़े लाट हैं। आपको ढाई लाख रुपया साल तनखाह मिलती है और साथ ही आपके ऊपर करीब १७ लाख रुपया साल व्यय होता है जिससे आप राजशाही ढंगसे रह सकें, सफर कर सकें, आमोद प्रमोदमें सम्मिलित हो सकें, उत्सवों, भोजों आदिका आयोजन कर सकें। नीचेके स्तरोंमें जिलोंके कलेक्टर हैं जो जिलाधीश भी कहे जाते हैं जिनको जिलामें अपनी मान मर्यादा बनाये रखनेके लिये दो हजारसे पचीस सौ रुपये महीने वेतन भत्ता आदि मिलता है और जिनके लिये चपरासी आदिका पूरा आयोजन अलगसे रहता है।

अंगरेज शासकोंको केवल बड़ी बड़ी तनखाहें ही नहीं मिलतीं उनसे यह आशा भी की जाती है कि वे उस आमदनीके अनुकूल शानसे रहेंगे। जब कोई नया अंगरेज नौकरीमें आता है तो ऊँचे अफसरोंकी बीबियाँ इनके यहाँ जाकर इनके मकानादिकी सजावटकी फिकर कर देती हैं जिससे कि वे उपयुक्त मर्यादाके साथ विदेशमें विजित जातियोंके बीचमें रहें और किसी प्रकार इनकी शानमें बट्टा न लगे। यदि ऐसी फिकर न की जाय तो शायद बहुतसे अंगरेज कभी भी इतना अपव्ययी जीवन व्यतीत करना न पसंद करें और अपनी बड़ी बड़ी तनखाहोंसे काफी पैसा बचाकर अपना घर भरनेका प्रबंध करें। जब यहाँ पर उन्हें इतना अपव्यय करना पड़ता है तो बहुतसे अंगरेज कुछ बचा भी नहीं पाते और वापस इंगलैंड जाकर बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। भारतके हाईकोर्टके किसी अंगरेज जजकी बीबीने इंगलैंड लौटनेपर आत्महत्या कर ली। कोरोनरकी अदालतमें पतिने यही बयान

दिया कि भारतमें हमें काफी तनख्वाह मिलती थी और बीबीकी आदत फजूलखर्चीकी हो गयी थी। आज जो पेंशन मुझे मिलती है उसके भीतर यह अपना खर्च मर्यादित नहीं कर पा रही थी जिससे कुछ दिनोंसे दुःखी थी। संभव है इसी ग्लानिके कारण उन्होंने आत्महत्या की। सारांश यह कि अपनी आवश्यकता, अपने देशके संस्कार और अभ्याससे बहुत ऊँचे पैमानेपर अँगरेज हिन्दोस्तानमें साम्राज्यवादके मौलिक सिद्धान्तोंको पुष्ट करनेके अर्थ रहते हैं और इनके राजा होनेके कारण जो भारतीय उसी प्रकार जीवन-निर्वाह करनेकी क्षमता रखते हैं वे भी वैसा ही करने लगते हैं। इस स्थितिमें समाजपर जो प्रभाव पड़ता है उसे समझना आ-वश्यक है।

---

(३१)

भारतीय सरकारी कर्मचारी

आरंभमें सब ऊंचे शासन पद अंगरेजोंके ही हाथमें रहते थे और उनकी आवश्यकताओं, उनकी मान-मर्यादा आदिका विचार कर उनका वेतन निश्चय किया जाता था। वेतनका रुपया अवश्य ही करोंके रूपमें सख्तीसे प्रजासे वसूल किया जाता था। प्रजाका हित, प्रजाका सामर्थ्य, प्रजाका सुख-दुःख नहीं देखा जाता था। प्रधान उद्देश्य यह था कि भारतमें अंगरेजोंकी शान बनी रहे। इस शानमें बट्टा न लगे, इसके लिये एक बातका और भी ख्याल करना जरूरी था। लोभके साधन देश-में बहुतसे हैं। ईस्ट इंडिया कंपनीके जमानेमें बड़ी लूट-खसोट, घूसखोरी बेइमानी प्रचलित थी। बहुतसे अँगरेज करोड़पति होकर वापस इंगलैंड

सामाजिक समता हो जाय। सरकारी लोगोंका साथ होनेके कारण अपने समाजमें भी इनको विशेष पद मिलने लगता है। इस प्रकारसे नीचेसे ऊपर तक सरकारी कर्मचारियोंके रहन-सहनकी नकल करनेवाले लोग मिलते हैं जो अपनी हैसियतके परे रहते हैं और जिनके अपव्ययका भी भार जाकर दरिद्र किसानों और मजदूरोंके ही ऊपर पड़ता है। कर्मचारियोंका व्यय-भार करके रूपमें धन देकर गरीब वहन करते हैं, उनकी नकल करनेवाले गैर-सरकारी राजा, नवाब, जमींदार, तालुकदार आदिके बढ़े हुए खर्चोंका भी बोझ लगान, मालगुजारी, सेस, तरह-तरह के अबवाब आदि देकर इन्हे ही बरदाश्त करना पड़ता है।

सामाजिक स्थितिपर इसका कैसा भयंकर दुष्परिणाम पड़ता है, यह इतना विचार करनेसे ही समझा जा सकता है कि जो लोग राजपुरुषों-के फेरमें पड़ते हैं उनका मन अपने गाँवोंसे हट जाता है। पहले भी कुछ लोग राजोंके दरबारोंमें घूमा करते थे। पर इनकी संख्या कम थी। राजदरबार भी एक ही था। आज राजदरबार जिले-जिले हो गया है। गाँवोंको छोड़-छोड़कर कर्मचारियोंको खुश करनेकी आकांक्षासे लोग शहरोंमें दौड़े आ रहे हैं। ग्रामीण जनतासे उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क सब छूट गया पर उस जनतासे अपने खर्चके लिये — और दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए खर्चके लिये — वे अधिकाधिक धन माँगते रहते हैं। उनसे इन्हें कोई हमदर्दी नहीं रहती जो उनके बीचमें रहनेसे होती। इनका रहन-सहन, वेश-भूषा, भाव-भाषा सब दूसरा हो जाता है। इस स्थितिमें भारतीय समाजका भयंकर विघटन होता जा रहा है। राजकर्मचारियोंसे उन साधारण ग्रामीणोंसे कोई सम्बन्ध और सम्पर्क नहीं जिनकी सेवाके लिये वे मुकर्रर हैं पर जिनपर शान जमाने और जिन्हें दबानेमें ही ये अपने कर्तव्यकी

इतिश्री समझते हैं। इनका रहन-सहन अलग हो जानेके कारण इनसे मिलना-जुलना भी कम हो सकता है, इस कारण इनमें परस्परका अपनापन नहीं रह गया है, वे एक दूसरेके लिये विदेशी हो गये हैं। जो गैर-सरकारी लोग ऊपरी तबकेके हैं वे सरकारी कर्मचारियोंका साथ करते हैं, वे भी गरीबोंको अलग छोड़ देते हैं। अंगरेज गरीब भारतीयको कुली, मजदूर, खिदमतगार, खानसामा, मेहतर आदिके रूपमें देखते हैं और उसे निकृष्ट जन्तुवत मानते हैं। उनकी नकल करनेवाले भारतीय कर्मचारी भी अपनेको उनकी ही तरह अपने छोटे भाइयोंसे अलग मानकर उनपर हुकूमत करते हैं, उन्हें पददलित करते हैं, उनसे अपना काम निकालकर उन्हें दूर कर देते हैं। बड़े गैर-सरकारी लोग जो सरकारी कर्मचारीकी नकल करते हैं उनके भी ये ही भाव हो जाते हैं। वास्तवमें इस स्थितिने हमारा सारा सामाजिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और हममें आपसका भयंकर भेदभाव पैदा कर दिया।

---

(३२)

हमारी साधारण जनता

अंगरेजी राजके कारण जो नये वर्ग हमारे देशमें पैदा हुए उनके सदस्योंकी संख्या यद्यपि बहुत थोड़ी थी पर उनका प्रभाव बहुत अधिक था। सब प्रकारका मान-सम्मान, सब प्रकारकी शक्ति, सब धन-दौलत उन्हींके हाथोंमें केन्द्रीभूत हो गया। बाकी लोग हर प्रकारकी मुसीबतोंमें पड़ गये। पहले तो इन्होंने ऐसा राज ही नहीं देखा था जो इतना सर्वव्यापी हो, जो केन्द्रसे बैठा हुआ सब बातों और सब जीवोंपर अधिकार

रखे। यह राज अपना कर बड़ी कार्यकुशलतासे एकत्र करता है और इसमें कर देनेवालोंके हित-अहितकी चिन्ता नहीं करता। राजप्रबन्ध बहुव्यापी होनेके कारण करका भार भी असह्य हो गया। एक तरफ राजाने कर तो लिया, पर दूसरी तरफ करसे जो लाभ सर्वसाधारणको मिलना चाहिए वह नहीं मिला। सर्वसाधारणकी शिक्षा-दीक्षा, कृषि-वाणिज्य, सुख-दुःखकी उसे कोई चिन्ता न थी। यह कहा जा सकता है कि पहलेके राजा तो और भी लापरवाह थे, वे तो अपने करसे ही मतलब रखते थे। यह ठीक है पर इसके साथ ही साथ क्षण क्षणके जीवनमें उनका कोई हस्तक्षेप भी नहीं था। हर समय उनके प्रतिनिधि स्वरूप कर्मचारी प्रजाके सिरपर सवार भी नहीं रहते थे जो इनकी खबर सदा केंद्रको पहुँचाते रहें, न इन्हें आत्मरक्षाके लिये इतना अयोग्य हो बना रखा था जैसा कि वे अँगरेजी राजमें हो गये। इनके सब हथियार छिन गये जिससे न हिंस्र जन्तुओंसे अपने जानकी, न डाकू चोरोंसे अपने मालकी ये रक्षा कर सकते हैं। अगर हिरन आदि ऐसे जानवरोंका आक्रमण इनकी फसलपर होता है तब भी ये अपने बचावके लिये कुछ नहीं कर सकते। मुश्किल से इनके हाथों में लाठियाँ रह गयी हैं जिनके कारण परस्पर की फौजदारी तो हो जाती है पर बाहरी लोगों या हिंस्र पशुओं आदि से रक्षा नहीं होती। यदि सामूहिक रूपसे ये अपना संघटन भी करना चाहें तो कोई न कोई शिकायत केंद्रको पहुँच जाती है और किसी न किसी बहाने उनका काम बन्द कर दिया जाता है।

यदि कृषिकी उन्नति और वाणिज्य की वृद्धिका प्रबन्ध राज करता तो कर देनेमें उतनी शिकायत न होती और धन धान्य से देश भरा

रहता। जिस प्रकार की परंपरामें हमारी जनता पली थी उसके लिये यह स्थिति बिलकुल नयी और असह्य हो गयी। नये प्रकारके राजकी जितनी खराबियाँ थीं उनकी तो यह शिकार हुई, पर उसका जो लाभ था उससे वह वंचित रही। नये राजने एक तरफ परस्पर लड़ झगड़कर अपने मामलोंका प्रजाही द्वारा तसफीया कराना बन्द करना चाहा, दूसरी तरफ उसने इनके तसफीयेके लिये अदालतें कायम कीं। यदि कानून की पोथियाँ देखी जायँ तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि पग-पगपर हर एक व्यक्तिको कानूनकी मदद मिल सकती है, वह अपने मामलोंको योग्यतम पक्षपात रहित राज-कर्मचारियों से तसफीया करा सकता है। पर वास्तव-में ऐसा नहीं है। कानून की शरण जानेमें बड़ी परेशानी और बड़ा खर्च उठाना पड़ता है। दस कोस चलकर इस्तेगासा दायर करो, फिर वकील मुखतार रखो, फिर गवाह ठीक करो, फिर अदालत पहुँचो, वहाँ से कभी मामला मुल्तवी हो जाता है, कभी पुकार ही नहीं होती। छोटे छोटे मामलोंके भी तय होनेमें महीनों और बरसों लग जाते हैं, इधर झगड़ा बढ़ता जाता है, काम काज सब बन्द हो जाता है, आमदनी कम और खर्च ज्यादा होने लगता है और नतीजे में चाहे जीत हो चाहे हार तबाही ही तबाही का सामना करना पड़ता है। इससे डरकर बहुत लोग अदालतके पास ही नहीं जाते, चुपचाप अनाचार अत्याचार सहन-कर लेते हैं। कुछ लोगोंने अदालतोंमें जाने और औरोंको ले जानेका पेशा कर रखा है जो दूसरोंको बेवकूफ बनाकर अपना लाभ करते हैं। इनके कारण झूठका सच और सचका झूठ प्रतिदिन होता रहता है और नैतिक पतन सबका जोरोंसे होता जाता है। कमी लोग अब भी अपने झगड़े खुद ही लड़कर, मार-पीटकर, गाली-गलौज देकर तय करते

ही रहते हैं और अदालतोंके चंगुलसे बचनेके लिये स्थानीय सरकारी कर्मचारियोंको कुछ ले देकर और खुश रखकर अपने मामलोंको दबाये रहते हैं। कानूनने वास्तवमें देशमें शान्ति नहीं फैलायी पर ऐसे नये नये तरीके निकाले कि शान्तिकी स्थापनाके पुराने मार्ग सब बन्द हो गये और नये मार्गसे बहुत कम लोग लाभ उठा सके। कर्मचारियोंका इतना जोर हो गया कि यदि वे किसीको अपने चंगुलमें फँसाना चाहते हैं तो वे किसी न किसी व्याजसे फँसा ही सकते हैं, और यदि कोई अभियोगसे अन्तमें बच भी जाय—जैसा बहुत कम संभव होता है—तो भी वह तबाह हो ही जाता है।

इस राजमें नगरोंका महत्व बढ़ता गया और ग्रामोंका गौरव कम होता गया। पहले अधिकतर धनी लोग भी अपने गावोंमें ही रहते थे, वहींसे अपने वाणिज्य-व्यापार, घर-गृहस्थी की फिकर करते थे। आराम और आसाइशकी इतनी वस्तुएँ भी नहीं थी कि धनी लोग अपने पड़ोसियोंसे किसी दूसरे रूपमें रह सकें। कुछ कपड़ा अधिक सौफियाना पहन लें, कुछ मकान बड़ा बनवा लें, कुछ अधिक अच्छा भोजन कर लें, कुछ सजी हुई बैलगाड़ियोंपर चढ़ लें—पर बाह्यरूपसे जीवन सबका करीब करीब एक ही प्रकारका रहता था, अमीर गरीबमें बहुत फरक नहीं होता था। ऐसी अवस्थामें द्वेश ईर्ष्याके साधन कम थे। सब वर्गोंके लोगोंमें परस्पर सहयोग भी काफी था, एक दूसरेके सुख-दुःखमें साथ दे सकते थे। पर अब योग्य लोग सब अपनी आकांक्षाओंको पूरा करने नगरोंकी तरफ दौड़े। गाँवमें यदि कोई लड़का कुछ पढ़ लेता तो भी शहरमें किसी नौकरीकी लालसासे चला जाता। गाँव तो केवल अपढ़ मूर्खोंके रहनेके ही योग्य समझा जाने लगा। गाँवोंकी दरिद्रता बढ़ने

लगी। दरिद्रताका जो अनिवार्य परिणाम होता है अर्थात् जनवृद्धि वह भी होने लगी। मृत्युकी संख्या भी बहुत थी, पर जन्मकी संख्या उससे कहीं अधिक हो गयी। इससे दरिद्रता और भी बढ़ी और घबरा-घबराकर गाँवके लोग कल-कारखानोंमें नौकरी करने बड़े-बड़े शहरोंमें भागने लगे। वहाँ यद्यपि कहनेको पैसा अधिक मिलता था, पर उनकी दरिद्रता वहाँ भी उन्हें सताये रहती थी। विस्तृत खेतोंमें रहनेवाले तंग अन्धेरी कोठरियोंमें, एकके ऊपर एक लदे हुए नगरोंके गली-कूचोंमें रहने लगे। ये अपना पेट काट-काटकर पैसा घर भेजते जिससे वहाँ अपने कुटुम्बीजनोंका काम चले और सरकारी मालगुजारी दी जाय। नगरोंमें इनके कारण मज-दूरोंकी एक समस्या पैदा हो गयी। गाँवोंके कृषक शहरोंके मजदूर सब ही बड़े कष्टका जीवन व्यतीत करने लगे। हाँ, बड़े-बड़े कर्मचारिओं, बड़े-बड़े वकीलों, बड़े-बड़े पूँजीपतियों और बड़े-बड़े भूमिपतियोंका एक गरोह विशेष वैभवसे रहने लगा। इन उच्चश्रेणियोंके नीचे मध्यवृत्तिवाले बुद्धिजीवी भी हैं जो शारीरिक श्रमसे भागते हैं, ऊँचे पैमानेसे रहना चाहते हैं और येन केन प्रकारेण अपने परस्पर जीवनमें विरोधी भावों और अभिलाषाओंका समन्वय करते चले जा रहे हैं।

---

(३४)
ऊँचे और नीचे समुदाय

आज भारत पुराना भारत नहीं रह गया है। यह नगरों और गावों-के संघर्षका भारत, अमीर और गरीबके भेदोंका भारत, पुरानी और नयी संस्कृतियोंकी टक्करका भारत, पढ़े और अनपढ़के मनोमालिन्यका भारत, सर-

कारी और गैर-सरकारीके द्रोहका भारत, भिन्न भिन्न जातियों समुदायों सम्प्रदायों विचारधाराओंके भीषण झगड़ेका भारत, हो गया है। थोड़ेसे धनी, शिक्षित, अधिकार प्राप्त कर्मचारी, प्रभावशाली वकील, पूँजीपति और भूमिपति, नये प्रकारसे जीवन यापन करनेवाले लोग अपने परस्परके आन्तरिक झगड़ोंको लिये हुए एक तरफ हो गये, और अपढ़, पुरातन रूढ़िमें रहनेवाले, अति परिश्रम कर भी कठिनाईसे अपना जीवन निर्वाह करनेवाले, हर तरहकी दिक्कतोंमें दबे हुए, उच्च श्रेणियोंके नाना प्रकारसे शिकार होनेवाले जन-साधारण दूसरी तरफ हो गये। यद्यपि ये जनसाधारण अपने पुराने तरीकोंसे ही रहते जाना पसन्द करते थे पर नये राजप्रबन्ध और विचारधाराओंका असर इनपर पड़ता ही रहा और वे इनसे लाभ न उठा कर इसके चक्करमें पड़कर अपना हानि ही करने लगे। उदाहरणार्थ पहले जहाँ एक डंडा मारकर या खाकर लोग दुश्मनी निकाल लिया करते थे और डंडेकी चोटके अतिरिक्त और हानि नहीं होने देते थे, वहाँ अब दुश्मनी निकालनेके लिये, अनुचित लाभ उठानेके लिये, कानूनके दाँव-पेचके शरण लोग जाने लगे और हर तरहसे अपनी तबाही करने लगे। जहाँ पहले झूठ बोला नहा जाता था, पन परमेश्वर एव समान मानकर लोग अपने मामलेकों,साफ साफ दूसरोंके सामने रख तसफीया करा लेते थे, वहाँ अब सच बोलना ही लोग भूल गये और अदालतोंमें झूठा दाँव लगाने लगे और उसीमें मग्न होकर अपना सर्वनाश करने लगे।

पढ़े लिखे जो सरकारी नौकरीमें नियुक्त गये थे वहाँ अपने अधिकारका दुरुपयोग कर छोटोंके ऊपर जुल्म करने लगे, जो वकील हुए वे बातचीतके पेचोंमें इन्हें फँसाकर अपना लाभ करने लगे, जो व्यापारी हुए वे इनके श्रमसे फायदा उठाने लगे और मालूम लोभसे इनसे अपनी

तरफ आकर्षित तो करते थे पर इनकी भलाई बुराईका कुछ ख्याल नहीं करते थे। जो भूमिपति थे वे अन्य पढ़े लिखे नये प्रकार से रहनेवालोंकी श्रेणियोंमें अपना पद खोजने लगे और जो लोग उनके आश्रित थे उनके हितका विना विचार किये उनसे अधिकाधिक धन चूसने की फिकरमें पड़े जिससे उच्च श्रेणीके लोगोंकी वे भी बराबरी कर सकें। यदि विचार किया जाय तो संसार को बड़े बड़े कर्मचारियों, वकीलों, व्यापारियों और भूमिपतियोंकी आवश्यकता नहीं है। यदि ये न हों तो किसीको कुछ हानि नहीं होती। संसारको चलानेके लिये निम्न श्रेणीके ही लोगोंकी अधिक आवश्यकता होती है और यदि किसान, मजदूर, धोबी, भंगी आदि न हों तो संघटित मनुष्य समाज संभव ही न हो। हम मानते हैं कि अगुओंकी, नेताओंकी, पथप्रदर्शकोंकी आवश्यकता समाजको सदा रहती है और यदि ये न हों तो निम्न श्रेणीके लोग भी सुसंघटितरूपसे काम न कर सकेंगे, पर जिस प्रकारसे हमारे यहाँ कृत्रिम उच्च श्रेणी पैदा हुई और सुदृढ़ और प्रभावशाली होती गयी उससे हमारी हानि ही हानि हुई और व्यक्ति-व्यक्तिमें, गरोह-गरोहमें, श्रेणी-श्रेणीमें हमारे यहाँ जितना अन्तर हो गया उतना सम्भवतः और कहीं नहीं है।

उच्च श्रेणीके लोग एक प्रकारसे एक गरोहमें बँध गये। इनका रहन-सहन, खाना-पीना, आचार-विचार अंगरेजोंकी तरह होने लगा। यदि अंगरेज इन्हें मिल जाँय तो संभवतः उनसे ये अधिक संतोषके साथ बात कर सकें बनिस्बत अपने यहाँके लोगोंके साथ। पर अंगरेजोंका साथ इन्हें नहीं ही मिलता था, अँगरेज अलग ही रहते थे, इस कारण अंगरेजी पढ़े-लिखे, अंगरेजी विद्यासे प्राप्त पेशेवाले एक पृथक गरोहके हो गये और परस्पर ही संबंध रखने लगे। अपने पुरातन समाजसे पृथक

न हो जायें इस भयसे वे देशी प्रकारके कपड़े आदि तो पहनते पर उनके हृदयका खिचाव विदेशी प्रकारोंकी ही तरफ रहा—अथवा उन प्रकारोंकी तरफ जिन्हें ये अंगरेजी समझते थे—और वे अपने को यूरोपीय लोगोंके अनुरूप भी करने लगे। यह अमीर गरीब मात्रका अन्तर नहीं हुआ, यह सांस्कृतिक अंतर हो गया। अमीर भारतीय चाँदीके थालमें खायगा, मोटे गद्दे पर बैठेगा, और अगर कोई गरीब भाई आ जाय तो न ऐसे थालमें खानेमें और न ऐसे बिस्तर पर बैठनेमें उसे दिक्कत होगी क्योंकि उसके खाने और बैठनेका प्रकार भी वैसा ही होता है चाहे साधारणतः वह पत्तल या मिट्टीके बरतनमें खाता हो और टाट या चटाई पर बैठता हो। वैसे ही अँगरेज कुर्सी पर बैठते हैं और काँटे चिम्मचसे टेबुलपर खाते हैं। अमीर अच्छी गद्देदार कुर्सी पर बैठते हैं, गरीब स्टूलपर, अमीर शानके काँटे चिम्मच चलाते हैं, भोजन करते हुए इन्हें १०।१२ बार बदलते हैं, गरीब साधारण काँटा चिम्मच प्रयोग करते हैं और एक ही से काम चलाते हैं, किन्तु प्रकार एक होनेसे उन्हें एक दूसरेके साथ उठने-बैठने खाने-पीनेमें कोई दिक्कत नहीं होती। पर अमीर अंगरेज और अमीर हिन्दोस्तानी एक ही आर्थिक श्रेणीके होते हुए भी अगर अपने अपने प्रकारसे ही रहते हैं तो एक साथ जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। इसी प्रकार गरीब अंगरेज और गरीब हिन्दुस्तानी भी एक साथ नहीं जिन्दगी बसर कर सकते अगर वे अपने तौर तरीकोंमें कुछ परिवर्तन नहीं करते। इस प्रकरणसे यह अनुमान सरलमें किया जा सकता है कि जो हिन्दुस्तानी विदेशी ढंगसे रहने लगे वे अपने देशके लोगोंसे पृथक हो गये, उनकी भेष-भूषा, भाव-भाषा, खाना-पीना, रहन-सहन, आचार-विचार सब अलग हो गया। उनका आचरण भी अपने भाइयोंकी तरफ

भारतस्थित अधिकारप्राप्त अँगरेजोंका सा हो गया जिसमें घृणा और तिरस्कारका भाव था और उनसे अनुचित लाभ उठाकर अपनेको आनन्द देनेकी अभिलाषा थी। यह अभूतपूर्व दृश्य हमारे देशमें कितनी ही जगहोंपर देख पड़ने लगा और हमारे वातावरणको असह्य रूपसे दूषित कर इसने हमें सारे संसारके सम्मुख उपहास्य बना दिया और हममें आपसका ऐसा घोर अन्तर पैदा कर दिया कि हम एक देश नहीं, कई देशोंके विकृत रूपसे हो गये।

---

(३५)
सरकारी कर्मचारीका गौरव

यों तो सरकारी कर्मचारियोंका विशेष पद सब ही स्थानोंमें होता ही है। छोटे छोटे कर्मचारीको भी अपने भाइयोंके ऊपर राजकी तरफसे अधिकार न्यूनाधिक रहता है। हर एक सरकारी कर्मचारी राजका प्रतिनिधि होता है, राजदण्ड अपने हाथोंमें रखता है, और छोटी सी छोटी बातमें राजका सारा यंत्र चालू कर सकता है। तथापि आजकलके शासन-प्रबंधोंमें सरकारी कर्मचारी पर्याप्त नियंत्रणमें रखे जाते हैं जिससे किसी तरह ये अपने पदका दुरुपयोग न कर सकें, उससे अनुचित लाभ न उठा सकें, प्रजाको व्यर्थ कष्ट न दे सकें। किसी न किसी रूपमें गैर-सरकारी लोगोंका भी निरीक्षण इनके ऊपर रखा जाता है और सद्मार्गोंमें चलनेके लिये ये सदा ही प्रभावित और प्रोत्साहित किये जाते हैं। भारतमें ये विशेष पद रखते हैं। एक तो कुछ हमारे यहाँके मध्यकालकी परम्परा राजपुरुषोंको विशेष महत्व दिये हुए है, उनको कई अनुचित प्रकारोंसे

अनाचार भी करनेका अधिकार इस परंपराने एक प्रकारसे दे रखा है, दूसरे विदेशी शासनमें प्रजाके ऊपर जोर जबरदस्ती अनिवार्य भी हो जाती है और राजपुरुषकी शान बनाये रखना विशेष प्रकारसे आवश्यक भी रहता है। जो कुछ हो भारतमें सरकारी कर्मचारी सारे समाजचक्रका केन्द्र सा है, उसीके चारों तरफ नर-नारी घूमते से देख पड़ते हैं, वही अपने पड़ोसमें सबसे महत्वका पुरुष होता है, और उसकी चर्चा जितनी होती है उतनी कम लोगोंकी होती होगी।

मामूली तरहसे तो यही समझना चाहिए कि जैसे और पेशे हैं वैसे सरकारी नौकरी भी पेशा है और जैसी अन्य पेशोंमें विशेष विशेष कर्तव्य और अधिकार हैं वैसे ही इसमें भी होंगे। कुछ हदतक कितने ही स्वशासित लोकतंत्रात्मक देशोंमें ऐसा करनेका प्रयत्न भी हुआ है पर भारतमें सरकारी आदमियोंका पद बहुत ही बड़ा है और ये गैर-सरकारी लोगोंपर अनुत्तरदायी रूपमें अधिकार रखते हैं और इनके आरामके लिये सबको सेवा करनी पड़ती है, सबही इनसे भयभीत रहते हैं और इनके कारण एक प्रकारका आतंक समाजमें सदा छाया रहता है। श्रेणी-दर-श्रेणी ये ही सब अभीष्ट वस्तुओंके अधिक अधिकारी होते हैं। अपने भाईसे शक्ति तो अधिक रखते ही हैं, साथ ही मान भी अधिक पाते हैं, वेतनके रूपमें धन भी अधिक पाते हैं, और इनके आराम आसाइशके लिये, आमोद प्रमोदके लिये अत्यधिक प्रबंध भी किया जाता है। वास्तवमें यह सब अंग्रेज शासकोंके ही लिये किया गया था, पर उनके भारतीय सहायकोंके लिये भी ऐसा ही करना आवश्यक हुआ जिससे इनकी मर्यादा भी विशेष प्रकारसे स्थापित रहे और ये अपने समाजमें श्रेष्ठ पद कायम रख सकें और अंगरेजोंके बाद इन्हींको गौरव प्राप्त हो। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी अवस्थामें हम भार-

तीय सरकारें नौकरियोंकी ही तरफ झुके और इनमें योग्यतम लोग उसीमें जाकर अपनी अभीष्ट-सिद्धिका मार्ग देखते रहे । और जो कुछ है सो तो है ही, पर इनके अनुत्तरदायित्व और हर प्रकारके दण्डसे इनका सुरक्षित रहना बड़ी बेचैनी पैदा करता है । इनमेंसे छोटे बड़े सब एक दूसरेका समर्थन करते हैं और गैर-सरकारी लोगोंपर प्रभुत्व जमाए रहना, उनपर राज्य करते रहना, उनसे अपना काम निकालना, उनको अपने अधीन समझते रहना, थोड़ेमें उन्हें दबा रखनेमें और अपने लिये मान-शान, दाम-आराम सबकी खोज करना ये अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानते हैं । देशके लिये यह दुःखद स्थिति है इसमें कोई सन्देह नहीं । सरकारी कर्मचारीका पद इतना ऊँचा समझा जाना उनके नैतिक जीवनके लिये हानिकर है, योग्यतम लोगोंका हर श्रेणीमें सरकारी नौकरी खोजना गैर-सरकारी जीवनके लिये अहितकारी है, सर्वसाधारणका सदा अपनी दीन अवस्थाका अनुभव करना और भयभीत रहना उनके आत्मसम्मानका घातक है, और इस दशामें देशका उद्धार होना कठिन क्या असम्भव सा हो रहा है ।

शायद थोड़ेसे उदाहरणोंसे ही हमारा अर्थ स्पष्ट हो जायगा । यहाँके सरकारी कर्मचारीका सदा कहना यही रहता है कि हम अमन अमानके लिये, शान्ति और सुव्यवस्थाके लिये, जिम्मेदार हैं । उस संबंधमें अगर कोई भी कुछ उनसे कहता है तो चिढ़कर, क्रोधकर या समझाकर वे यही जवाब देते हैं कि हम जिम्मेदार हैं, हम किसीकी बात या सलाह इस सम्बन्धमें नहीं सुन सकते । जिम्मेदारीका तो यही अर्थ समझा जा सकता है कि यदि कार्यविशेषमें कुछ दिक्कत पेश आवे तो उसकी जिम्मेदारी कर्मचारीकी होगी, यदि शान्तिभंग हो तो कर्मचारी दण्ड पावेगा । पर ऐसा होता नहीं । घोरसे घोर संकट आ जाय और कर्मचारी अपने स्पष्ट

कानूनन घूस लेना और देना दोनों ही जुर्म है। नतीजा यह होता है कि अधिकारप्राप्त पुरुष घूस ले लेता है, जबरदस्ती लेनेपर भी सुरक्षित है क्योंकि वह गैर-सरकारी आदमीको देनेके अभियोगमें पकड़वा सकता है और खुद बच जा सकता है। तहसीलमें रुपया जमा करते हुए, थानेपर रिपोर्ट लिखाते हुए, अदालतमें दरखास्त देते हुए घूसका बाजार गर्म रहता है, पर कोई कर्मचारी पकड़ा नहीं जाता, कोई सजा नहीं पाता यद्यपि यह स्थिति किसीसे छिपी नहीं है। यदि शिकायत हो तो यह कहा जाता है कि क्यों देते हैं और यदि यह कहा जाय कि न देनेसे सब काम ही बन्द हो जाय तो मजाक उड़ाकर मामला भी उड़ा दिया जाता है। अभियुक्त कानूनके खिलाफ हवालातोंमें बन्द रहता है, उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। कहा जाता है कि कानूनी कार्रवाई क्यों नहीं की जाती और यदि कोई नहीं करता तो वह अवश्य दोषी ही अपनेको मानता होगा। पर ऐसा कहनेवाला यह भूल जाता है कि मुकदमा चलानेके लिये, अपील करनेके लिये, हवालातसे छुटकारा पानेके लिये, अपने पक्षमें न्याय करानेका प्रयत्न करनेके लिये पग-पगपर पैसेकी जरूरत पड़ती है और बहुत कम लोगोंके पास पैसे या सहायक होते हैं जो अपने मामले-मुकदमेकी पैरवी करा सकें और कितने तो चुप-चाप अन्याय, अनाचार, अत्याचार सह लेते हैं क्योंकि उसके प्रतीकारका साधन उनके पास नहीं है। यह उत्र दृश्य ऐसा सर्वव्यापी हो गया है, हम इससे ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि इसे उतना ही स्वाभाविक मानते हैं जितना प्रातःकाल सूर्यका पूर्वमें उदय होना और हम यहाँतक समझने लगे हैं कि यह सब तो सरकारी कर्मचारीका हक है, उसके पदका यह भी एक जरूरी अङ्ग है, इसीसे वह राज्य करता है और कर सकता है और प्रजागणका कर्त्तव्य है कि वह इसे बर्दाश्त करे और सदर्प अपने

हीनपदको स्वीकार करते हुए उसीके अनुरूप आचरण करे। यदि कोई अच्छा कर्मचारी मिल जाता है तो लोगोंको आश्चर्य होता है, उसकी बड़ी प्रशंसा होती है। उसका खराब होना ही साधारण बात समझी जाती है और खराबको कोई अपयश नहीं देता, उसके आचरणको कोई अनुचित नहीं समझता, न उसपर ताज्जुब करता है।

औचित्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो यही ठीक प्रतीत होता है कि साधारण लोगोंको जिस मानदण्डसे नापा जाता है उससे अधिक तीव्र मानदण्ड सरकारी कर्मचारियोंके लिये होना चाहिए, क्योंकि ये प्रजाकी सेवा करनेके लिये अच्छा वेतन पाते हैं, उनकी रक्षाके लिये नियुक्त किये जाते हैं, और विशेष योग्यता देखकर ही और एक-एकको ठोक बजाकर ही रखे जाते हैं। इनमें दोष पाते ही, इनके कर्तव्यसे विमुख होते ही, इन्हें गलत निर्णय करते देखते ही, इनकी कड़ी सजा होनी चाहिए। सो कुछ नहीं होता। कोई आश्चर्य नहीं कि इनका आतङ्क बढ़ता जाता है, ये दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक मनमाने होते जाते हैं और गैर-सरकारी आदमियोंकी तरफ इन्हें तिरस्कारका भाव आ गया है तथा उन्हें अपमानित करने और व्यर्थ कष्ट पहुँचानेमें इन्हें आनन्द मिलता है। ये अपनी ही सुविधा देखते हैं, अपना ही आराम खोजते हैं, अपने ही लाभकी फिकरमें रहते हैं। उधरसे उक्त गैर-सरकारी आदमी इनसे डरता है, हर तरह इनसे दबता है, इन्हें प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करता रहता है। सामाजिक उत्सवोंमें इन्हें आगे जगह दी जाती है, श्रेणी-दर-श्रेणी इन्हींको ऊँचा समझा जाता है। इनको देखते ही इन्हींकी खातिरमें सब आसपासके लोग लग जाते हैं। शायद ही कोई गरोह इतना मनमाना, अनुत्तरदायी, सुरक्षित हो जितना कि भारतमें सरकारी नौकर है। वह अपनी सवारीके लिये गैर

बलशाली जातियोंका आक्रमण हुआ। पहले जर्मन जातियोंने इङ्गलैण्डपर कब्जा किया, फिर डेनमार्कवाले वहाँ पहुँचे। ग्यारहवीं शताब्दीमें फ्रांसके एक प्रदेश नार्मण्टीके ड्यूकका इनके ऊपर राज्य हुआ। तबसे इंगलैण्डका इतिहास स्थिरतासे चलने लगा। १६वीं शताब्दीमें रानी एलिजवेथके समयमें इनका साम्राज्य समुद्रपर हुआ और वहाँसे अन्य सब देशोंको ये खदेड़ने लगे। इनका वाणिज्य बहुत बढ़ा और दूर दूरके प्रदेशोंमें इनका शासन भी होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दीमें रानी विक्टोरियाके समय इनका बड़ा भारी विशाल साम्राज्य संसारके कोने कोनेमें फैल गया। अपने इस लंबे इतिहासमें इंगलैण्डके लोगोंने अपने लिये एक विशेष प्रकारका और विचित्र लोकतंत्रात्मक राजतंत्र कायम किया जो संसारको इनकी विशेष देन है और जिसकी नकल कोई दूसरा देश यत्न करनेपर भी किसी तरह न कर सका।

अंगरेजोंकी व्यक्तिगत मनोवृत्ति एक विशेष प्रकारकी है। इसका भौगोलिक कारण तो यह है कि ये टापूके रहनेवाले हैं और इस कारण दुनियासे कटे हुए हैं। ये अपनेसे ही संतुष्ट हैं और दूसरोंके संबंधमें इनके विचार बहुत ही अनुदार हैं। समुद्रपर प्रभुत्व पानेके कारण ये बहुत बड़ा साम्राज्य कायम कर सके जिसका इन्हे बड़ा गर्व है। प्रत्येक अंगरेज अपनेको पृथ्वीका मालिक समझता है। इनके देशकी प्रकृति बहुत ही प्रतिकूल है। कोहरा, ठंड, बर्फ इन्हें सदा सताये रहते हैं जिस कारण ये प्रकृतिसे सदा लड़ते रहे हैं। इस प्रकारसे ये बड़े ही पुष्ट और शरीरसे बलवान लोग होते हैं। संसारसे पृथक रहनेके कारण ये देशभक्त भी बहुत बड़े हैं और प्रजातंत्रात्मक राज्य कायम कर लेनेके कारण ये स्वतंत्रताके भी बड़े प्रेमी हैं। यदि इनकी प्रकृति और प्रवृत्ति थोड़ेमें बतलायी

जाय तो यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिसे लड़ते रहनेके कारण ये बड़े बहादुर लोग हो गये हैं और यद्यपि ये जीतते ही रहे हैं पर हारनेपर भी ये यथासंभव मनोमालिन्य नहीं रखते, नयी स्थितिके अनुकूल अपनेको कर लेते हैं, फिर, उद्योग करते हुए जीतनेका प्रयत्न करते ही रहते है। बड़े साम्राज्यके मालिक होनेके कारण इन्हें बड़ा गर्व है जो दूसरोंको खलता है और यद्यपि ये किसीका अपमान न भी करना चाहें पर दूसरे जब इनके आचरणसे दुःखी होते है तो इनकी समझमें नहीं आता कि ऐसा क्या होगया जिससे किसीको चोट पहुँची। टापूके रहनेवाले होनेके कारण ये दूसरे लोगोंको न समझना चाहते हैं, न समझ सकते हैं, इस कारण ये अपनेमें ही अपनेको संकुचित किये रहते हैं। ये गम्भीर प्रकृतिके भी होते है और अपने मनका हाल दूसरोंसे जल्दी नहीं बतलाते पर दूसरेका जल्दी हाल जान लेते हैं और शासनमें उसका उपयोग कर अद्भुत कुशलताका परिचय देते है। ये स्वतंत्रताके बड़े प्रेमी हैं, और यद्यपि इन्होंने दूसरोंकी स्वतन्त्रताका हरण किया है तथापि स्वतन्त्रताके लिये लडनेवालोंकी ये इज्जत करते है और दूसरों-की भी स्वतन्त्रताके युद्धोंमें इन्होंने अकारण ही व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे अपना सब कुछ लगा दिया है। सच्ची स्वतन्त्रताके लिये अपनेको योग्य बनानेके उद्देश्यसे ये बड़ी सख्तीकी शिक्षा-दीक्षा पाते हैं, बड़े निय-न्त्रणसे रखे जाते हैं और इस कारण इनका जीवन बड़ा ही नियमित रूपसे बीतता है। ये कायरोंका बड़ा तिरस्कार करते है। इनके समाजमें स्त्रियोंका बड़ा आदर है और सब कामोंमें स्त्रियाँ पुरुषोंके साथ ही रहती हैं और संसारके जीवनमें अपना उपयुक्त स्थान रखती हैं। हम भारतीयोंकी प्रकृतिमें और अंगरेजोंकी प्रकृतिमें बहुत अन्तर है, यद्यपि

मनुष्यताके नाते हम दोनोंमें बहुतसी समानता भी है। यह संसारके अद्भुत दृश्योंमें है कि क्यों और कैसे दो जातियोंमें जो एक दूसरेसे इतनी फरक हैं, इतना जबर्दस्त सम्पर्क हो गया। कोई आश्चर्य नहीं कि अंगरेज और भारतीय एक दूसरेको नहीं समझ पा रहे हैं और एक दूसरेसे बेचैन हैं।

---

(३८)

अंगरेजोंका पृथक वर्ग

प्रकृत्या अंग्रेज एकाकी पुरुष है। वह अपनेमें ही केन्द्रीभूत रहता है। यों तो आदमी सामाजिक जन्तु है, दूसरोंका साथ वह खोजता है और अकेला रह नहीं सकता पर अंगरेज यथासम्भव कम नर-नारियोंका साथ करना पसन्द करते हैं। आपसमें भी वे एक दूसरेसे दूरी पसन्द करते हैं। जब तक कोई परिचय न करावे वे आपसमें भी बातें नहीं करते। इनके देशमें सड़कोंपर या रेलोंमें सब चुपचाप चले जाते हुए ही देख पड़ते हैं। स्वयंका स्वयं परिचय कर बातचीत नहीं छेड़ते। यह इनकी विशेष प्रकृति है जिसके कारण और लोग इनसे हैरान रहते हैं। भारतमें भी यह अपनी पुरानी प्रकृति रखे। हमारे यहाँ बहुत जल्दी लोग एक दूसरेका नाम-पता, घर-गृहस्थी, धन-दौलत की बात कर जाते हैं। अंगरेज और हिन्दुस्तानीका आपसका इतना जबरदस्त प्रकृति-भेद दोनोंके कारण आरंभसे ही इन दोनोंमें परस्पर कुछ भेद रहा होगा। पर शुरूमें अंग्रेजोंमें [illegible] शेखी नहीं आती थी। इनकी संख्या भी थोड़ी थी। इसी देश

और भारतके बीच आने जानेका इतना सरल प्रबन्ध भी नहीं था जितना आज है। साथ ही व्यापारके उद्देश्यसे आनेके कारण यहाँके लोगों से मिलना और उनसे सम्बन्ध रखना इनके लिये अनिवार्य था। इनका यहाँ विवाह सम्बन्ध भी बहुत हुआ। पर ये यहाँ कभी बसे नहीं। थोड़ेसे लोग विशेष कारणोंसे बस गये पर अधिकतर सदा अपने ही देशकी तरफ दृष्टि लगाये रहते थे और यहाँका काम समाप्त करते ही ये वापस घर चले जाना चाहते थे। भारतमें बाहरसे इसके पहले भी बहुतसे विदेशी आये। वे सब यहाँ बस गये। यहाँके लोगोंमें समाविष्ट हो गये। चाहे धर्मके प्रचारके लिये आये हों चाहे व्यापार वाणिज्य या लूट मारके लिये, चाहे शरण पानेके लिये आये हों चाहे राज्य करनेके लिये, शुरूमें ही सब विदेशी यहाँ बसते जाते थे। पर अंगरेज ऐसे लोग थे कि ये अलग ही रहे और जब इनका राज्य यहाँ जम गया, जब हर दृष्टिसे इनका पद ऊँचा हो गया, जब इनके देशसे यहाँतक आने जानेका बहुत सुगम प्रबन्ध हो गया, जब इनकी संख्या इतनी काफी हो गयी कि ये आपसमें ही सब अपनी सामाजिक आवश्यकताएँ पूरी कर सकने लगे, तब तो भारतीयोंसे इनका सम्पर्क बिलकुल ही कट सा गया।

जो हमसे इनका सम्पर्क होता भी था सो हमारे लिये अच्छा नहीं था क्योंकि इनके मनमें हमारे लिये उसके कारण सम्मान और श्रद्धा नहीं उत्पन्न हो सकती थी। उलटे हमारे लिये उनके हृदयमें तिरस्कारका ही भाव होता था। आज स्थिति यह है कि व्यापारमें जब अंगरेज हमसे मिलते हैं तो उनको ऐसा मालूम होता है कि हम सच्चरित्र और ईमानदार नहीं हैं, हम चालाकी करते हैं और ठीक माल नहीं देते। उच्च अधिकारी जो हमसे मिलते हैं वे समझते हैं कि हम गद्दार हैं, उनकी नकल

कर, उनकी खुशामद कर उनसे कुछ अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं, या तो नौकरी चाहते हैं या उपाधि चाहते हैं या यों ही अकारण उन्हें प्रसन्न कर उनके समाजमें घुसना चाहते हैं और इस उद्देश्यसे अपने भाइयोंसे घृणा करते हैं और उनकी बुराई करते हैं। साधारण अंगरेज अधिकारी या तो हमें बंदियों, अपराधियों, चोर-डाँकू, अनाचारीके रूपमें अपनी अदालतोंमें देखते हैं या बहुत ही दबे हुए, घूसखोर, अत्याचारी एवं एक अधीन कर्मचारियोंके रूपमें देखते हैं। हमारे कौटुम्बिक और सामाजिक जीवनसे इन्हें कोई संबन्ध नहीं रहा है और इस कारण ये हमें साधारण मनुष्यके रूपमें न देखते रहे, न हमारी इनकी सम-मनुष्यताके रूपमें मुलाकात ही होती रही। हम इनसे बहुत दूर रहते आये हैं, ये हमसे दूर रहते रहे हैं। हम इनसे भयभीत रहे हैं, ये हमारा तिरस्कार करते रहे हैं। अंगरेज शिक्षक और पादरीका जो समुदाय रहा है उससे उनके बराबर हिन्दोस्तानियोंसे बहुत कुछ समताके रूपमें मुलाकात होती रही और परस्परकी अच्छी मित्रता भी हो जाती है। इसपर भी अंगरेजका भाव कुछ अपनेको बड़ा ही समझनेका रहता है। यों तो शिक्षक अपनेको स्वाभाविक रूपसे बड़ा समझता ही है क्योंकि वह पढ़ाता है, दूसरे पादरी लोगोंका यह विश्वास है कि हम असभ्योंको सभ्य बनाने और धर्महीनोंको धर्म देने आये हैं। अँगरेज शिक्षकोंका जीवन अधिकतर अपनेसे छोटे लोगोंके शिक्षा देनेमें और पादरियोंका समय हीन दीन भारतीयोंको फिक्र करनेमें ही बीतता रहा।

सारांश यह कि हर तरहसे अँगरेज और हिन्दोस्तानी एक दूसरेसे अलग रहे। जिन अँगरेज पुरुषोंका हिन्दोस्तानी स्त्रियोंसे विवाह हुआ वे भी हिन्दोस्तानी नहीं हो सके, जिन हिन्दोस्तानी पुरुषोंका अँगरेजी स्त्रियोंसे विवाह हुए

वे अँगरेज न हो सके। ऐसे लोगोंका भी गरोह अलग अलग विकसित होने लगा। जो जातियाँ हमारे देशमें आकर बस गयीं उन्होंने हमें कुछ दिया और हमसे कुछ लिया। जब लोग बगल बगल रहते हैं तो एक दूसरेको प्रभावित करते ही हैं, एक दूसरेके सुख-दुःखमें सम्मिलित होते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं। जब लोग अलग अलग रहते हैं तो अपना जीवन अलग अलग निर्वाह करते हैं और एक दूसरे से दूर दूर-से ही मिलते हैं, उनका परस्परका कोई सम्बन्ध कायम ही नहीं होने पाता। जब प्रकृत्या ही इतना भेद होता है जितना अँगरेज और हिन्दोस्तानीका तो सम्बन्ध और भी कठिन हो जाता है। और जब सम्बन्ध स्थापित करनेका कोई प्रयत्न ही नहीं किया जाता और उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती तो पार्थक्य बढ़ता ही जाता है। इस दशामें दोनों देशोंकी बड़ी हानि हुई है और जो सम्पर्कका लाभ होता है वह जरा भी नहीं होने पाया। इस समय जो स्थिति है वह काफी भीषण है। दोनों आश्चर्य कर रहे हैं कि क्यों ऐसा हुआ। दोनों ही समस्याको हल करना चाहते हैं पर कर नहीं पा रहे हैं। हम अँगरेजोंको अपना न सके। उन्होंने हमें अपनेसे दूर रखा। हम एक दूसरेको समझ न सके। हम एक दूसरेका साथ न दे सके और शायद ही संसारमे कहीं ऐसा दृश्य देख पड़ा हो कि दो जातिया दो सौ वर्षोंसे सम्बन्ध रहते हुए भी एक दूसरेसे बिलकुल अलग रहें। वास्तवमें यह दृश्य दुःखद है और दोनोंके ही लिये लज्जाजनक भी है।

कर, उनकी खुशामद कर उनसे कुछ अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं, या तो नौकरी चाहते हैं या उपाधि चाहते हैं या यों ही अकारण उन्हें प्रसन्न कर उनके समाजमें घुसना चाहते हैं और इस उद्देश्यसे अपने भाइयोंसे घृणा करते हैं और उनकी बुराई करते हैं। साधारण अंगरेज अधिकारी या तो हमें बंदियों, अपराधियों, चोर-डाँकू, अनाचारीके रूपमें अपनी अदालतोंमें देखते हैं या बहुत ही दबे हुए, घूसखोर, अत्याचारी सहायक अधीन कर्मचारियोंके रूपमें देखते हैं। हमारे कौटुम्बिक और सामाजिक जीवनसे इन्हें कोई संबन्ध नहीं रहा है और इस कारण ये हमें साधारण मनुष्यके रूपमें न देखते रहे, न हमारी इनकी सम-मनुष्यताके स्तरपर मुलाकात ही होती रही। हम इनसे बहुत दूर रहते आये हैं, ये हमसे दूर रहते रहे हैं। हम इनसे भयभीत रहे हैं, ये हमारा तिरस्कार करते रहे हैं। अंगरेज शिक्षक और पादरीका जो समुदाय रहा है उससे उनके बराबरके हिन्दोस्तानियोंसे बहुत कुछ समताके रूपमें मुलाकात होती रही और परस्परकी अच्छी मित्रता भी हो जाती है। इसपर भी अंगरेजका भाव कुछ अपनेको बड़ा ही समझनेका रहता है। यों तो शिक्षक अपनेको सामाजिक रूपसे बड़ा समझता ही है क्योंकि वह पढ़ाता है, दूसरे पादरी लोगोंका यह विश्वास है कि हम असभ्योंको सभ्य बनाने और धर्महीनोंको धर्म देने आये हैं। अँगरेज शिक्षकोंका जीवन अधिकतर अपनेसे छोटे लोगोंको शिक्षा देनेमें और पादरियोंका समय हीन दीन भारतीयोंकी फिकर करनेमें ही बीतता रहा।

सारांश यह कि हर तरहसे अँगरेज और हिन्दोस्तानी एक दूसरेसे अलग रहे। जिन अँगरेज पुरुषोंका हिन्दोस्तानी स्त्रियोंसे विवाह हुआ वे भी हिन्दोस्तानी नहीं हो सके, जिन हिन्दोस्तानी पुरुषोंका अँगरेजी स्त्रियोंसे विवाह हुआ

वे अँगरेज न हो सके। ऐसे लोगोंका भी गरोह अलग अलग विकसित होने लगा। जो जातियाँ हमारे देशमें आकर बस गयीं उन्होंने हमें कुछ दिया और हमसे कुछ लिया। जब लोग बगल बगल रहते हैं तो एक दूसरेको प्रभावित करते ही हैं, एक दूसरेके सुख-दुःखमें सम्मिलित होते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं। जब लोग अलग अलग रहते हैं तो अपना जीवन अलग अलग निर्वाह करते हैं और एक दूसरे से दूर दूर-से ही मिलते हैं, उनका परस्परका कोई सम्बन्ध कायम ही नहीं होने पाता। जब प्रकृत्या ही इतना भेद होता है जितना अँगरेज और हिन्दोस्तानीका तो सम्बन्ध और भी कठिन हो जाता है। और जब सम्बन्ध स्थापित करनेका कोई प्रयत्न ही नहीं किया जाता और उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती तो पार्थक्य बढ़ता ही जाता है। इस दशामें दोनों देशोंकी बड़ी हानि हुई है और जो सम्पर्कका लाभ होता है वह जरा भी नहीं होने पाया। इस समय जो स्थिति है वह काफी भीषण है। दोनों आश्चर्य कर रहे हैं कि क्यों ऐसा हुआ। दोनों ही समस्याको हल करना चाहते हैं पर कर नहीं पा रहे हैं। हम अँगरेजोंको अपना न सके। उन्होंने हमें अपनेसे दूर रखा। हम एक दूसरेको समझ न सके। हम एक दूसरेका साथ न दे सके और शायद ही संसारमें कहीं ऐसा दृश्य देख पड़ा हो कि दो जातिया दो सौ वर्षोंसे सम्बन्ध रहते हुए भी एक दूसरेसे बिलकुल अलग रहें। वास्तवमें यह दृश्य दुःखद है और दोनोंके ही लिये लज्जाजनक भी है।

---

(३९)

यूरोपीय संस्कृति और अँगरेज

आजकी यूरोपीय सभ्यता तीन स्रोतोंसे आयी है, आजका यूरोपीय तीन संस्कृतियोंका फल स्वरूप है। २५०० वर्ष पहले यूनानकी सभ्यताका बड़ा प्रताप था। इसकी प्रधान विशेषता इसकी सौन्दर्यकी उपासना थी। यूनान सौंदर्यमय था। इसके आजके खण्डहर भी इसकी पुरानी विभूतिके साक्षी हैं। सुन्दर स्त्री-पुरुष, सुन्दर भवन, सुन्दर वस्त्र — सब इनके यहाँ सौन्दर्यमय था। यूनानियोंकी संस्कृति ही सौंदर्यकी उपासना थी। इसके बाद रोमकी सभ्यता और रोमवासीकी संस्कृतिका प्रबल प्रताप रहा। संसार इनके प्रति कानूनकी व्यवस्थाके लिये ऋणी है। कानूनका अर्थ है कि सब काम नियमोंके अनुसार होना चाहिए। आवश्यकता पड़ते ही नियम बना लेना चाहिए और उसीके अनुसार सबको आचरण करना चाहिए। जो उसके विरुद्ध जाय उसे समाजका शत्रु मान कर उसका दण्ड होना चाहिए। कानूनकी पोथियाँ, अदालतें, कानूनके अनुसार जीवनको व्यतीत करना — यह सब रोम अपनी थातीकी तरह छोड़ गया है। इसके बाद ही ईसामसीहका संप्रदाय संसारको मिला। इन्हींके अनुयायी आजके यूरोपीय लोग हैं। ईसाने दया, क्षमा, भ्रातृत्वकी शिक्षा संसारको दी। इनके अनुयायियोंका यह धर्म था कि अपनेसे छोटेपर दया करें, अन्याय अत्याचार करने वालोंको क्षमा करें, सबसे भ्रातृभाव रखें। प्रधान मतवादोंमें यही एक मजहब है जिसमें ब्रह्मचर्यका इतना विचार किया है कि इसके प्रवर्तक ईसाने विवाह तक नहीं किया, किसी स्त्रीसे शारीरिक संबंध नहीं रखा

और कहनेको यहाँतक भी कहा जाता है कि इनका जन्म बिना किसी पुरुषके पूर्व संसर्गके इनकी माताके गर्भसे हुआ। इस मजहबमें किसी धार्मिक कृत्यमें पशुबलि भी नहीं होती। आजका यूरप यूनान, रोम और ईसाईधर्म द्वारा प्रवर्तित सभ्यताओंका फलस्वरूप है, आजका यूरोपीय इन्हीं संस्कृतियोंकी संतति है।

यूरोपीय देशोंमें भी संभवतः इंगलैंडमें इन पुरातन प्रभावोंका सर्वोत्तम विकास हुआ और तीनों ही सिद्धान्तोंके शायद अंगरेज सबसे अच्छे प्रतिपादक और प्रतिपालक हैं। सौंदर्यकी उपासना ये काफी करते हैं। व्यायाम आदिका जितना शौक इनको है उतना कमको होगा। स्त्री-पुरुष सब ही अपने शरीरकी अच्छी रक्षा करते हैं और उन्हें सुन्दर वस्त्रोंसे आवृत भी करते रहते हैं। घरोंके भीतर और बाहर फूल-पत्तीकी सजावटसे और नाना प्रकारके दरी गलीचे, रंगीन कागज आदिसे काफी सौंदर्य बनाये रहते हैं। साधारण अंगरेजका भी घर देखने योग्य होता है। वह बहुत साफ सुथरा सजा हुआ देख पड़ता है और उसे ऐसा रखनेमें ये काफी परिश्रम भी करते हैं। सड़कोंपर पेड़ लगाकर, बीच बीचमें उद्यान बनाकर, स्थान स्थानपर मूर्तियाँ स्थापित कर, कलाकुशल-प्रवीणोंको उत्साहित कर, नानाप्रकारके संग्रहालयोंको स्थापित कर, ये यूनानकी पुरानी परंपराको कायम किये हुए हैं। कानूनका भी ये बड़ा ख्याल करते हैं। जब ये जबरदस्ती करते हुए भी पाये जाते हैं तो किसी कानूनके ही आश्रयमें ऐसा करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जिस प्रकार हिन्दू अपने हाथोंके बनाये हुए देवताके सामने भयभीत होकर उसकी पूजा उपासना करता है, उसी प्रकार अंगरेज अपने ही हाथोंके बनाये हुए कानूनके सामने काँपते हैं, उसकी बड़ी इज्जत करते हैं, उसके अनुकूल चलते हैं और उसके विरुद्ध

जानेपर दण्ड सहर्ष स्वीकार करते हैं। हर अवस्था और आवश्यकताके लिये यह नियम फौरन बनाते हैं और उसके विरुद्ध चलना अनुचित समझते हैं। यदि कोई नियम कड़ा मालूम पड़ता है तो उसके परिवर्तनके लिये भी नियमानुसार ही आचरण करना पसंद करते हैं। जान बूझकर उसके विरुद्ध यदि कोई चलता है तो इन्हें आश्चर्य होता है। अपने यहाँ भी इन्होंने कानूनका साम्राज्य कायम कर सबको जकड़ रखा है, हमारे यहाँ भी ऐसा ही किया है चाहे हमें अभीष्ट हो या न हो, चाहे उसका हमारे ऊपर कितना ही भीषण वीभत्स हानिकर प्रभाव पड़ा हो। हर बातके लिये कानून बनाकर और हर जगह अदालतें कायम कर अंगरेज रोमकी पुरानी परंपराको जगाये हुए हैं।

साथ ही ईसाई सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका इनपर पर्याप्त रूपसे प्रभाव है। यद्यपि यह कहा जा सकता है—और ऐसा कहना उचित है जिसका अँगरेजोंके पास कोई उत्तर नहीं है—कि ईसाई-सम्प्रदायके मूल सिद्धान्तों-का हनन कर ही उनका साम्राज्य स्थापित हुआ है और चलाया जा रहा है, यद्यपि यह सत्य है कि अंगरेजों द्वारा की हुई बड़ी ही क्रूरता और बर्बरता संसारने देखी है और गैर-यूरोपीय जातियोंने इनके हाथ असंख्य वेदनाएँ व्यर्थ सही हैं, तथापि यह भी कहना ही पड़ेगा कि इन्होंने दुःखियोंके प्रति दया की है, विरोधियोंके प्रति सहनशीलता दर्शायी है और मानव संसारकी एकता और समताकी स्थापनामें हाथ बटाया है। संभवतः सचाईके साथ इनके लिये कहा जा सकता है कि कितनी ही जगहों-पर अतुल शक्ति होते हुए भी इन्होंने शक्तिका दुरुपयोग नहीं किया है और दूसरोंकी बातें सह ली हैं तथा हीन दीनके लिये संघटित रूपसे शिक्षालय, चिकित्सालय, वाचनालय, संग्रहालय आदि खोलकर यह

प्रमाणित किया है कि ईसाके इस उपदेशको वे भूले नहीं हैं कि अपनेसे जो हीन-दीन हो, जो दरिद्र-दुखिया हो, जो आर्त्त हो उसकी रक्षा करो, उसपर दया करो और यदि आवश्यकता हो तो उसके लिये जान भी दे दो। सौंदर्यकी खोजमें ये अपने अधीनोंके भी सुन्दर स्थानों, सुन्दर विचारों, सुन्दर कृतियोंका आदर करते हैं, उन्हें ढूंढ़ निकालते हैं, उनकी रक्षा करते हैं। कानूनकी खोजमें ये प्रकृतिके नियमोंका अनुसंधान करते हैं, और उनका उपभोग कर आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कारोंसे जीवनको भरापूरा करते रहते हैं और बिजली ऐसी भयंकर प्राकृतिक शक्तियोंको मनुष्यके प्रतिदिनके काममें लगा देते हैं। अपने व्यक्तिगत, कौटुम्बिक और सामुदायिक जीवनको भी नियमोंके अनुकूल चलाते हैं जिससे वे समयके बड़े पाबन्द रहते हैं, सब वस्तुओंको यथास्थान रखते हैं और यथासंभव अपने दैनिक जीवनमें अपने आचरणके संबंधमें किसीको सशंक रहनेका अवसर नहीं देते। दया-धर्मकी खोजमें ये नाना प्रकारकी सामाजिक सेवाएँ कर अपनेसे कम सम्पन्न नर-नारियोंके लिये उपयोगी संस्थाएँ बनाते हैं। वास्तवमें यूनान, रोम और ईसाका यूरोपीय सभ्यतापर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है और तीनोंके समन्वयका साधारण अंगरेज भी अच्छा प्रतिनिधि है।

---

(४०)
परस्परका पार्थक्य

जो लोग पास-पास रहते हैं, एक दूसरेसे दोस्ताने तौरसे बराबरीकी हैसियतमें मिलते रहते हैं, वे एक दूसरेसे बहुत सी बातें सीखते हैं। एक

दूसरेकी अच्छी बात भी लेते हैं, बुरी बात भी। धीरे-धीरे दोनोंकी अच्छी खराब बातोंका समन्वय होकर नया आचार-विचार पैदा हो जाता है। आगे चलकर दोनोंकी परम्परा एक हो जाती है, खराब अच्छेका समन्वय हो जाता है। जो लोग एक दूसरेको दूर दूरसे ही देखते हैं, वे एक दूसरेकी खराब बातें तो बहुतसी सीख जाते हैं, पर शायद ही कोई अच्छी बात सीख पाते हैं। भारतमें हिन्दोस्तानियों और अंगरेजोंके अलग अलग रहनेसे यही नतीजा हुआ। इसमें जातिभेद और वर्णभेद होनेके कारण जो तिरस्कारकी दृष्टिसे उच्च श्रेणीके लोग निम्न श्रेणीके लोगोंको देखते हैं वह अंगरेजोंने हमें दूर दूरसे देखकर सीख लिया। वे समझे कि इनको ठीक रखनेका यही तरीका है, और ये बड़ेके हाथके दुर्व्यवहारसे बुरा नहीं मानते, कमसे कम उसे अनुचित नहीं समझते। हमारे प्रतिदिनके आचरणसे दूरसे वे यह भी समझे कि हमारे विचार में शासक अपने स्वार्थके लिये शासन करता है, वह शासितके प्रति जिम्मेदार नहीं है। यदि अगरेज हमको पाससे देखते तो शायद ये दृश्य उन्हें उसी रूपमें न देख पड़ते जैसा कि उन्हें देख पड़े और वे यह भी पाते कि साथ ही साथ इसके और भी पहलू हैं जिससे इनकी कटुता कम हो जाती है। अंगरेजोंने भारतीयोंकी सभी श्रेणियोंको अपनेसे छोटा मान लिया और वे ही लोग जो अपने देशमें बड़ी शिष्टताका व्यवहार करते हैं यहाँ उद्दण्ड और कठोर हो गये। भारतीयोंके जो गुण थे अर्थात् हमारी सादगी, धर्मनिष्ठा, कुटुम्ब-वात्सल्य आदि वे न अंगरेजोंको देख पड़े, न इन्हें देखनेकी उन्होंने इच्छा की, न यत्न किया, और इस कारण वे इन्हें अपना न सके।

भारतीयोंने भी अंगरेजोंको दूरसे ही देखा। उच्च पदस्थोंके रूपमें हमने इन्हें जुलूसोंमें और बड़े प्रभुत्वके स्थानोंपर बैठे हुए दरबारोंमें देखा,

अधिकारियोंके रूपमें इन्हें हमने अपने ऊपर हुकूमत करते हुए, जेल भेजते हुए, तिरस्कार करते हुए देखा, व्यापारियोंके रूपमें इन्हें अपना धन लूटते हुए देखा, पादरियोंके रूपमें भी इन्हें हमने अपने धर्म और अपनी संस्कृतिका अपमान करते देखा। हम इनके पास नहीं पहुँचे। इस कारण हम इनसे टरकर दूर ही रहते रहे। दूर दूरसे इनकी नकल करना चाहते थे जिससे हम भी कुछ इनके ऐसा आनन्द भोग कर सकें और यदि संभव हो तो अपने ही समाजमें कुछ उच्च आसन प्राप्त कर सकें। ऐसी अवस्थामें हम इनसे वे गुण तो सीख न सके जो इनके पास हैं, इनके दुर्गुण अवश्य हमने ले लिये। नियमित जीवन व्यतीत करना, सब कार्यको ठीक प्रकारसे करना, अपने कर्तव्योंका दृढ़तासे पालन करना, घोर परिश्रम और लगनसे काम करना, कौटुम्बिक जीवनकी सुन्दरता, स्वस्थता, परस्परकी एकता और विश्वासमें व्यतीत करना तो हमने सीखा नहीं, हाँ शराब पीना, बहुव्यय करना, व्यर्थकी शौकीनी करना, घुड़दौड़ ऐसे नये प्रकारोंके जूओंमें पड़ना आदि हमने अवश्य सीख लिया। यदि हम यह भी सीख लेते कि अंगरेजोंके जीवनमें इन खराबियोंकी भी क्या मर्यादा है जिसके कारण ये खराबियाँ भी बल और सुख देती हैं, कार्यमें सहायक होती हैं, तो हमारा कुछ नुकसान न होता। पर हमने इस मर्यादा को तो देखा नहीं, केवल उन व्यसनोंको देख अपना लिया जिससे धोखा खाया। अपने व्यसनोंमें उनका व्यसन तो जोड़ लिया, पर अपने गुणोंमें उनके गुण नहीं जोड़ सके।

जहाँ बड़े बड़े अंगरेज कर्मचारियों और उच्च पदस्थ अधिकारियोंका केन्द्र है वहाँका जीवन देखनेसे हमारा मतलब स्पष्ट हो जायगा। शिमला दिल्ली ऐसी जगहोंपर हमारे उच्च श्रेणीके सरकारी और गैर-सरकारी सभी लोग

इकट्ठा होते हैं। ये अंगरेजोंकी नकल करनेमें उनसे अधिक शराब पीते हैं, उनसे अधिक नाच रंगमें रहते हैं, उनसे अधिक खर्चीली शान करते हैं, उनसे अधिक चार कपड़े बदलते हैं। जो गैर-सरकारी धनिक हैं वे वहाँपर कोई काम नहीं करते, यों ही पड़े रहते हैं, घरका धन फूँकते हैं। इस कारण अपने ऊपर कोई संयम नहीं रखते, न अपना समय अंगरेजों-की तरह आठ आठ, दस दस घण्टे मानसिक, न तीन तीन, चार चार घण्टे शारीरिक श्रममें व्यतीत करते हैं। ये केवल आरामसे पड़े रहकर अपना सत्या-नाश करते हैं। इस सबका बोझ उनके निरीह किसानोंपर ही जाकर पड़ता है। यही दशा न्यूनाधिक नीचेके स्तरोंमें भी देख पड़ती है। :अगर हम अंगरेजोंसे बातचीतकी कला, कौटुम्बिक जीवनकी कला, आमोद प्रमोदकी कला, नियमित जीवन व्यतीत करनेकी कला सीख लेते, और साथ ही साथ अपने गुण भी बचाये रहते, तो हम अपना उद्धार आसानीसे कर लेते। हमारे लिये यह दुःखकी बात है कि अंगरेजोंकी कानून-व्यवस्थासे और उनकी शिक्षापद्धतिसे हमने अपनी हानि ही की, उनकी नकलकर हमने नुकसान ही उठाया, और जो हम उनके सम्पर्कसे अपना लाभ कर सकते थे वह उनके हमने पृथक रहनेके कारण हम न कर पाये और उनके वास्तविक जीवनसे कुछ सबक न सीख सके। हमारा तो कभी कभी ऐसा विचार होता है कि जब भारतपरसे अंगरेजोंका राजनीतिक प्रभुत्व हट जायगा तो शायद भारतमें अंगरेजोंके प्रभावका और उनके सदियोंके संबन्धका कोई निशान भी न रह जायगा। यह आश्चर्यजनक बात मालूम पड़ती है पर जैसी स्थिति है उसमें ऐसी ही संभावना प्रतीत होती है। देखें भावी इतिहासकार क्या लिखता है।

---

(४१)

अंगरेजी राज्यकी पराकाष्ठा

१९वीं शताब्दीके मध्यतक भारतमें अंगरेजी शासनकी स्थापना हो गयी थी । इनके न्यायालय बन गये थे, इनके शिक्षालय स्थापित हो गये थे, बहुतसे हिन्दोस्तानी इनकी नौकरी और नकल करने लगे थे, इनकी राजव्यवस्था सुदृढ़ हो गयी थी । पर भीतर भीतर आग भी सुलग रही थी । बहुतोंके मनमें अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रताके अपहरणकी चोट थी, बहुतोंके मनमें यह डर था कि हमारा धर्म और हमारी संस्कृति इन नये प्रकारोंके सामने लुप्त हो जायगी । कई शक्तियोंने मिलकर विद्रोह खड़ा कर दिया और १८५७ मे सशस्त्र युद्ध हुआ जिसमें अंगरेज बाल बाल बचे । भारतीयोंका व्यक्तिवाद, देशभक्तिका उनमें अभाव, उनके परस्परके मनोमालिन्यने उस सुअवसरको खो दिया । उसके बाद अंगरेजोंके राज्य-की नीव और भी सुदृढ़ हो गयी और साथ ही भारतीयोंको अपनी असहाय अवस्थाका अनुभव होने लगा और उनका ऐसा विचार हो गया कि अंग-रेजोंका राज केवल अनिवार्य ही नहीं है पर ईश्वर द्वारा हमारे हितके लिये भेजा गया है । अंगरेजी पढ़े लिखे लोगोंका यह विचार हो गया कि यदि हम अंगरेजी सभ्यताको अपनावेंगे तो हमारा उद्धार होगा, साधारण लोग समझने लगे कि इनकी कड़ी शासन व्यवस्थासे लूट मार कम हो सकेगी और हमारा जीवन अधिक सुख और शान्तिमें बीतेगा । शताब्दीके चौथे चरणतक पहुँचते पहुँचते इंगलैंडकी रानी भारतकी साम्राज्ञी जाविनेसे घोषित हो गयीं, भारतके बचे खुचे देशी राजाओंने भी अपने ऊपर उनका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और उनके प्रतिनिधि भारतस्थित बड़े लाटके सम्मुख

झुकनेमें अपना अपमान नहीं माना। सबने अपने हथियार रख दिये और पूर्ण रूपसे अंगरेज शासकोंकी कृपापर अपना सारा जीवन अवलम्बित कर दिया, उनकी शानकी रक्षामें अपना मान समझने लगे और उनकी संस्थाओंकी स्थापना जगह जगह चाहने लगे।

नये शासनके द्योतक न्यायालय, शिक्षालय, और शासकोंके सुन्दर भवन हैं। सब जगह इन्हींकी माँग होती थी और इन्हींको देखकर जन साधारण भी प्रसन्न होते थे, स्वयं दुःखी रहते हुए भी इनमें गर्व करते थे। यह दृश्य ऊपरसे नीचेतक हमारे देशमें देख पड़ता है। यदि कुछ लोग पृथक् प्रान्त चाहते हैं तो उनकी माँग यह होती है कि हमारे प्रान्तके लिये नया और विशाल हाईकोर्ट तयार किया जाय, नया और विशाल विश्वविद्यालय स्थापित हो, नया और विशाल गवर्मेंट हाउस अर्थात् नये लाटके रहने योग्य सुसज्जित भवन तयार हो। यदि किसी शहरके स्थानीय लोग अपना महत्त्व बढ़ाना चाहते हैं तो उनकी माँग भी इसी प्रकारकी होती है—यहाँ विद्यालय हो, उपयुक्त न्यायालय हो, अधिकारियोंके रहने योग्य मकान हों। यदि कोई गाँववाले अपना गौरव बढ़ाना चाहते हैं तो उच्चाधिकारियोंको मानपत्र देकर यह प्रार्थना करते हैं कि यहाँ नयी प्रकारकी पाठशाला कायम हो, कुछ नहीं तो अवैतनिक मजिस्ट्रेटोंका न्यायालय हो, और पुलीसका उपयुक्त थाना या चौकी बना दी जाय। हमारी रायमें जो ही वस्तुएँ अँगरेजी शासनकी हानिकर देन हैं वे ही हम अभीष्ट मानकर उन्हींकी माँग पेश करते हैं, उन्हींको देखनेकी अभिलाषा करते हैं। हमारी शारीरिक ही नहीं मानसिक दासता भी पूर्णरूपसे स्थापित हो गयी।

पर प्रकृतिका कुछ नियम ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्हीं बातोंका

परस्पर विरोधी परिणाम भिन्न भिन्न मस्तिष्कोंपर पड़ता है और जो ही वस्तु किसी एक उद्देश्यसे कायम की जाती है वही विपरीत उद्देश्य भी सिद्ध करनेमें सहायक हो जाती है। यह भी सत्य है कि कोई भी व्यक्ति या वस्तु या संस्था संसारमें अमर नहीं है। एक स्तरतक पहुँचकर वह नीचे उतरती ही है और अन्तमें नष्ट होती है। हर एक चीज अगर अपनेमें निहित अपनी वृद्धिकी शक्ति रखता है तो अपनी मृत्युके अन्तिम कारण भी अपनेमें ही छिपाये रहता है। अगर एक तरफ न्यायालयोंने थोड़ेही लोगोंको अपनी तरफ आकर्षित किया और उनको आर्थिक लाभ पहुँचाया, तो दूसरी तरफ उन्होंने आदमी और आदमीकी बराबरी भी दिखलायी, अधिकारियोंके स्वेच्छाचारी न होनेकी बात बतलायी और उन्हें भी कानूनसे बँधे हुए साबित किया। शिक्षालय यदि एक तरफ ऐसे ही लोगोंको उत्पन्न करने लगे जो सरकारी नौकरीके ही लायक थे तो दूसरी तरफ वे ज्ञान और विद्याकी नयी नयी शाखाओंसे लोगोंको अभिज्ञ करने लगे, उनके मनमें नयी नयी भावनाएँ पैदा करने लगे, उनके हृदयोंको नयी नयी आशाओंसे सिंचित करने लगे। सरकारी अधिकारियोंके भवन यदि एक तरफ कर्मचारियोंकी शान बढ़ाते थे तो दूसरी तरफ लोगोंको दर्शाते थे कि उन्हींके पैसेसे और उन्हींके श्रमसे ऐसे भवन बुद्धि और शक्ति यदि हो तो बनाये और उपयोग किये जा सकते हैं। और लोग भी इच्छा करने लगे कि ऐसा ऐश्वर्य केवल चन्द लोगोंके ही लिये सुरक्षित न रहे पर इससे जो सुख और संतोष इने गिनेको मिलता है उसमें हम भी भाग ले सकें और वह सबको प्राप्त करानेका प्रयत्न किया जाय। इस प्रकार जो ही संस्थाएँ राजकी जड़को मजबूत करनेके लिये स्थापित हुई थीं और जो ऐसा कर भी रही थीं, उन्हींके कारण ऐसे

भाव पैदा होने लगे जो उसी जड़को हिलाने और कमजोर कर राजके अस्तित्वको ही मिटानेकी तयारी करने लगे।

---

(४२)
नये भावोंका उद्गम

करीब १८८० से १९१० अर्थात् तीस बरसकी एक पीढ़ी, १९-वीं शताब्दीके अन्त और २०वीं शताब्दीके आरंभ तकका भारतका इतिहास बहुत ही दिलचस्प है। यदि एक तरफ वकीलोंके कानूनी दाव-पेचोंसे लोग त्रस्त हो रहे थे तो दूसरी तरफ यह भी सोच रहे थे कि हिन्दोस्तानमें भी उसी प्रकारकी स्वतंत्र प्रजातंत्रात्मक राज-व्यवस्था होनी चाहिए जैसी इंगलैंडमें है। वैध आन्दोलन अर्थात् कानूनके भीतर रहकर उन्नति और सुधारके लिये प्रयत्न करनेमें वकीलवर्ग अन्य देशोंमें भी अग्रसर रहा है। भारतमें इनका दिन प्रतिदिन अधिकाधिक प्रभाव प्राप्त करता हुआ समुदाय राजनीतिक विकासके लिये यत्नशील हुआ। शिक्षित लोगोंद्वारा देशके भावोंको जाननेकी अभिलाषा शासकोंको भी हुई। आरंभमें परस्परकी सहानुभूतिसे भारतीय कांग्रेसकी स्थापना हुई। शुरू शुरू थोड़ेसे, फिर तो सारे देशके वकील इसमें एकत्र होने लगे। कुछ डाक्टर, कुछ शिक्षक, कुछ अखबारनवीस सभी साथ हो लिये। इस कांग्रेसका कार्यक्षेत्र प्रधान नगरोंमें ही रहा। पर इसकी शाखा शहरोंमें भी स्थापित होने लगी। यद्यपि कांग्रेस सालमें तीन चार दिनोंके ही लिये एकत्र होती थी, पर हिन्दोस्तानियों द्वारा सम्पादित अँगरेजीमें प्रकाशित बहुतसे अखबार, अँगरेजी जाननेवाली जनता और अँगरेजी

कर्मचारियों और राज्याधिकारी शासकोंके सम्मुख कांग्रेस की मांग बराबर उपस्थित करते रहे। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि इनकी मांग कानूनके सम्बन्धमें सुधार करनेके लिये—नयी व्यवस्थापक सभाएँ कायम करनेके लिये और न्याय और प्रबन्ध विभागोंको अलग करनेके लिये —और हिन्दोस्तानियोंको ऊँची नौकरी दिलानेके लिये ही प्रधानतः थी। इसका अर्थ यही होता है कि आरंभमें कांग्रेस अपने अन्तर्गत वर्गोंके ही हित-की तरफ विशेष दत्तचित्त थी। कानून की व्यवस्थामें सुधार वकीलोंसे ही सम्बन्ध रखता था, वे ही इसे समझते थे, वे ही इसमें लाभ उठा सकते थे, और ऊँची नौकरी भी शिक्षित लोगोंको ही मिल सकती थी। बीच बीचमें नमक कर आदिके सम्बन्धमें भी माँग पेश होती थी, जिससे जन साधारणका लाभ हो, पर ग्रामीण जनता और कष्टमें पड़े श्रमजीवियों तथा बेकारों आदिकी तरफ बहुत ध्यान नहीं दिया जाता था। कांग्रेसकी बैठकमें नेतागण सब अँगरेजी ढंगकी पोशाक पहिन अँगरेजी ढंगसे बैठते उठते थे और अँगरेजीमें ही बोलते थे। उनके रहने आदिके लिये अँगरेजी ढगसे ही प्रबन्ध होता था और बैठकें भी बड़े बड़े शहरोंमें ही होती थीं जिससे प्रबन्ध सरलतासे हो सके। जो कुछ हो, कांग्रेसका जोर बढ़ता ही गया और भिन्न भिन्न प्रदेशोंसे प्रतिनिधिगण एकत्र होकर परस्पर सलाह कर अपने नेताओंको चुनते थे जो सारे देशके राजनीतिक नेता समझे जाते थे और सब मिलकर अपनी मांगें पेश करते थे। जिन शासकोंने पहले कांग्रेसका इस विचारसे स्वागत किया था कि इसके द्वारा जन-साधारणके भावोंका पता लगेगा, वही अब भयभीत होने लगे और इसके विरोधी हो गये। अँगरेजी प्रकारसे रहनेवाले भारतीय यदि अँगरेजी समाजमें नहीं लिये जाते थे अथवा रेलादिमें ऊँचे दरजोंमें सफर करते हुए किसी अँग-

रेज द्वारा अपमानित होते थे तो इनके क्रोध की ज्वाला और बढ़ती थी और वे इसके प्रतीकारकी चिन्तामें अँगरेजी शासनके दुश्मन हो जाते थे।

शिक्षाप्राप्त लोग यदि एक तरफ अपने ज्ञानमें मस्त थे, विदेशी भाषा द्वारा प्राप्त विद्या में बड़ा गर्व करते थे और उससे यथाशक्ति अपना लाभ भी उठाते थे, तो दूसरी तरफ वे इस विद्याका प्रचार भी चाहते थे और अधिकाधिक अपने भाइयोंके लिये भी इसके द्वारा लाभ उठा सकनेका आयोजन करते थे। वे सरकारी नौकरी करते थे और दूसरोंके लिये भी रास्ते खोलते थे। वे आपसमें कहते थे, आपसमें कहते थे कि हम अँगरेजोंसे किस बातमें कम हैं कि हम उन ऊँचे स्थानोंपर नहीं पहुँच पाते जिनपर योग्यताके कारण नहीं केवल रंगके कारण अँगरेज बैठे हुए हैं। इनके द्वारा एक और बहुत बड़ा भारी काम हुआ। कितने ही अँगरेजोंके ग्रंथ देशी भाषाओंमें अनुवादित हुए और वे लोग भी जो अँगरेजी नहीं पढ़े थे, यूरोपीय विचारोंसे प्रभावित होने लगे। इनके मनमें नये भाव और तीव्रताके साथ उठे। अँगरेजी साहित्यका प्रत्यक्ष ज्ञान न होनेके कारण अँगरेजोंके प्रति ये उतना उदार विचार और कृतज्ञताके भाव नहीं रखते थे जितना अंगरेजी पढ़े लोग रखते थे। अँगरेजी पढ़े लिखे लोगोंद्वारा भारतके पुरातन इतिहासका अनुसन्धान होने लगा और उस समाजमें कवियोंका भी प्रचार हुआ जिससे अपने देशमें भारतीय गौरव देने लगे। ये अपनी ही भाषामें इन सब विचारोंको पाकर नये आदर्शोंसे भर गये और उन्हें प्राप्त करनेकी फिकरमें पड़े। ये अपनी भाषामें इनका प्रचार करने लगे और अमेरिका आदि आदर्शोंको भी नयी भावनाएँ सम्भाकर उन्हें भी व्यक्त करने लगे। यदि एक [illegible] अँगरेजोंकी बराबरी चाहते हुए अँगरेजी

साम्राज्यमें बने रहकर औपनिवेशिक पद प्राप्त करना चाहते थे और भारतको इंगलैण्ड की नकल बनाकर वहाँकी सब संस्थाओंको यहाँपर स्थापित करने की कामना रखते थे, तो दूसरी तरफ हमारे शिक्षित समाजके प्रयत्नोंसे विदेशी विचारोंका जनतामें देशी भाषाओंमें प्रचार होने लगा, अपने देशके पुरातन इतिहासका अन्वेषण कर उसका अध्ययन और मनन होने लगा, अपनी खोयी हुई स्वतंत्रताको पुनः प्राप्त करनेकी आकाक्षा बढ़ने लगी, और उस स्वतंत्रताको अपने ही अनुरूप बनानेका और अपने पूर्वकाल और पूर्वपुरुषोंमें गर्व अनुभव करनेका भी भाव जाग्रत होता गया। कितने ही लोग औपनिवेशिक पद मात्रकी माँगसे संतुष्ट नहीं थे, वे पूर्ण स्वराज चाहते थे। इसके लिये सब प्रकारके साधन भी काममें लानेके लिये ये प्रस्तुत हुए और वैध उपायों और सम्मेलनोंको छोड़कर ये अस्त्र शस्त्र उठानेके लिये भी तयार होगये।

यही समय है कि साम्प्रदायिक भावोंका भी उदय हुआ। अपनी दीन दशासे व्यग्र हो मुसलमानोंने भी नयी शिक्षासे लाभ उठाना चाहा। वे अभी तक अपने लुप्त वैभवके शोक और रोषमें ही थे। उन्होंने अब देखा कि इससे काम नहीं चलेगा और हमे भी अपना पृथकसे सघटन कर उन लोगोंकी तरह काम करना होगा जो इस समय प्रभावशाली होते चले जा रहे हैं। इन्होंने अपना अस्तित्व अलग कायम किया और देशके राष्ट्रीय प्रवाहों से पृथक होकर शासकोंसे अलगसे बात करना आरम्भ किया। अपना प्रसिद्ध विद्यालय भी अलीगढ़में इन्होंने कायम किया। अपने प्रतिनिधित्व और नौकरियोंके लिये भी अलगसे प्रयत्न किया। यही समय था कि हिन्दुओंमें धर्मसुधारक भी जोर लगा रहे थे। यदि बंगालका ब्रह्मसमाज और बंबईका प्रार्थनासमाज

अंगरेजोंकी नकल कर रहा था और ईसाई सभ्यताके अनुसार आचरण करनेमें देशकी भलाई देख रहा था, तो पंजाबका आर्यसमाज शुद्ध वेदोंको आधार मानकर क्रान्ति कर रहा था और पुराने प्रकारोंकी ही तरफ लोगोंको आह्वान कर देशमें जाग्रति पैदा कर रहा था। यह सब अंगरेजोंके शासनके लिये अच्छा ही था। शासितोंमें जितना विभाग हो, और जितने लोग शासकोंके पास आपसका झगडा मिटवानेके लिये और अपने लिये विशेष पक्षपातकी प्रार्थना करनेके लिये आवे उतना ही अच्छा है। इस स्थितिसे शासकोंने पर्याप्त लाभ भी उठाया। पर इसमें संदेह नहीं कि बहुतसे लोगोंमें विशेष कर नगर निवासियोंमें, एक प्रकारकी विशद बेचैनी फैल गयी जिसका स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूपसे यही कारण था कि लोग पुराने प्रकारोंसे थक गये थे, नये प्रकारकी खोजमें थे। नयी विचार धाराओंने नयी आकांक्षाएँ उत्पन्न कीं और वे इन्हें पूरी करने निकल पडे।

---

(८३)

पुरानी विस्मृति और नयी अभिलाषा

मनुष्यकी स्मृति बहुत ही अस्थायी होती है। बडे बडे दुःख भी जल्दी ही भुला दिये जाते हैं और जटिल संसारकी आवश्यकताएँ सबको व्यक्तिगत और सामूहिक रूपमें इस प्रकार जकडे रहती हैं कि पुरानी बातोंको याद रखनेका अवसर ही नहीं देतीं। १९वीं शताब्दीके अन्तमें भारतमें जो स्थिति थी उसमें कोई आश्चर्य नहीं कि नयी पीढियाने पचास साठ वर्ष पहलेकी भी दुर्व्यवस्थाको भुला दिया था। जो थोडेसे बूढे लोग बचे थे वे चाहे जितना ही कहें कि अंगरेजोंने बडा अमन चैन

देशमें कायम किया है, शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं, पर नये लोग नयी उम्र और नयी ज्योतिसे प्रभावित होकर आगे देख रहे थे, पीछे देखनेकी उन्हें फुरसत न थी। यदि पीछे देखते थे तो बहुत पीछे देखते थे—यदि हिन्दू थे तो मुसलमानोंके आनेके पहलेके भारतका वैभव देखते थे, यदि मुसलमान थे तो मुसलमानोंके राज्यके समयका अपना वैभव देखते थे, और सब यही सोचते थे कि यदि ये तीसरे लोग—अंगरेज—हमारे यहाँ आकर आफत न मचाते तो हम अच्छा स्वतंत्र भारत कायम कर लेते, परस्परका समझौता कर लेते। कुछका तो यहाँ तक ख्याल हो गया कि हमारी सब मुसीबतोंके कारण अंगरेज हैं और इनके जाते ही हमें सुख, शान्ति, समृद्धि सब स्वतः मिल जायगी। बहुतसे हिन्दोस्तानी विदेशोंमें भी जाकर, वहाँ सम्मान और शिष्टाचारका अनुभव कर, नयी अभिलाषाओंसे भारत वापस आते थे और यहाँपर उन्हें घोर निराशा ही निराशा चारों तरफ देख पड़ती थी जिससे वे बड़े ही विह्वल हो उठते थे।

पढ़े लिखोंके बीचमें तो ऐसी मानसिक स्थिति थी। अपढ़ ग्रामीण जनता भी पुरानी बातें भूल गयी। एक तो उसने नयी रोशनीसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं उठाया, दूसरे उसके जान मालकी हिफाजत उस दर्जे तक गवर्मेंटकी तरफसे नहीं होती थी जिस दर्जे तक शहरवालोंके, और ग्रामके लोगोंको राजका बोझ तो वहन करना ही पड़ता था, साथ ही अपनी रक्षाकी फिक्र भी खुद ही बहुत कुछ करनी पड़ती थी। उनके ऊपर करोंका भार बड़ा जबरदस्त पड़ा, वह बड़ी सख्तीसे उगाहा भी जाने लगा। माल, दीवानी और फौजदारी कानूनोंके दाँव पेंचने इन्हें काफी ग्रस्त कर दिया और बड़े लोगोंसे इनका प्रत्यक्ष संबंध कट जानेसे इनके रक्षक कोई भी नहीं रह

गये, इनके रक्षक ही भक्षक इन्हें नजर आने लगे। जब इनके बीच नये धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रचारक पहुँचे और इन्हें नयी-नयी बातें बतलाने लगे तो इनमें विशेष प्रकारकी क्रान्ति पैदा हो गयी। स्मरण रहे कि अपने ही देशकी भाषा बोलनेवाले नेतागण भी जोरोंसे पैदा हो रहे थे। इनमेंसे अंगरेजी पढ़े हुए भी अपनी भाषा बोलते थे, अपने ही वर्गका एक प्रकारसे तिरस्कार कर और उसे दूर रखकर अपने निम्नश्रेणीके भाइयोंके बीच जाकर इन्हें आन्दोलित करना वे अपना प्रधान कर्तव्य समझते थे। भारतके पुराने गौरवकी गाथासे साधारण लोग प्रसन्न होते थे क्योंकि उनके ज्ञानकी सीमा भी चन्द पुराने बड़े बड़े नामों और उनकी गाथाओंतक ही मर्यादित थी। जब उस समयके अपने समाजका गौरव ये सुनते थे तो अवश्य ही प्रफुल्लित हो जाते थे। वे उन दिनोंकी यादकर उन्हें फिर वापस लाना चाहते थे। बीचकी दुर्व्यवस्थाकी कथा ये नहीं जानते थे और जितना जानते भी थे उसे भूल गये थे।

नये प्रचारकगण केवल पुरानी कथाएं ही नहीं सुनाते थे। वे आत्मत्यागी लोकसेवी सुप्रभावोंसे पूर्ण सज्जनगण थे। वे जनसाधारणके बीच किसी स्वार्थसे नहीं, उनकी ही भलाईके लिये गये। वे इन साधारण लोगोंको सुनाते थे कि नये अंगरेजी पढ़े-लिखे वर्ग तुमको चूसते ही हैं, तुमको कुछ भी फायदा नहीं पहुँचाते। वकील, कर्मचारी, व्यापारी, भूमिपति सब तुम्हें तंग करते हैं और तुमपर ही, तुम्हारी मिहनत सहिष्णुतापर ही, उनका भोजन-पानी, ऐश-आराम निर्भर करता है। यदि ये न रहें तो तुम्हारा कोई नुकसान न हो, उल्टे तुम्हारा फायदा ही हो। अगर तुम न रहो तो उन्हें खाने पहननेको ही न मिले। तुम्हारी संख्या बहुत है, तुम्हारेमें संघटनकी कमी है। यदि तुम मिलकर

काम करो तो सब कुछ कर सकते हो। यह सब बात मनको आकर्षित करनेवाली थी। साधारण लोग जिन्होंने अबतक अपने दिन-प्रति-दिन के कष्टों और संघर्षोंके बाहर कभी ध्यान तक नहीं दिया था, वे भी आँख मलकर प्रचारकोंकी बातोंको सत्यके रूपमें देखने लगे। वे अपना महत्व पहिचानने लगे। वे अपनी दशासे असंतुष्ट होने लगे। जब ये आन्दोलक ऐसी बातोंके प्रचारके लिये गवर्मेंट द्वारा पकड़े जाने लगे तो ग्रामीण जनताका उद्वेग और भी बढ़ा। उन्होंने जाना कि अधिकार-प्राप्त वर्ग हमारा शत्रु है जो हमारे हितैषियोंको कष्ट देता है। जनताके आन्दोलनका भी दलन होने लगा, कभी लाठी कभी गोली इनको खानी पड़ी तो इनकी आँखें और भी खुलीं। इन्होंने यही समझा कि इस समयकी सारी समाज-व्यवस्था हमें दबानेके लिये है यद्यपि हमारी ही बदौलत यह समाज चल रहा है, हमारी ही संख्या अधिक है, हमीको सब परिश्रम करना पड़ता है, हमी अधिकतम कष्टमें हैं। पर उनका परस्परका कलह इतना जबरदस्त रहा और व्यक्तिगत स्वार्थभाव भी इतना अधिक रहा कि यद्यपि समूहमें बैठकर उनके भाव कुछ उत्तेजित होते थे, आपसमें वे इस किस्मकी बातें भी करते थे, पर जहाँ अपने काम-धाम घर-गृहस्थीमें पहुँचे वहाँ वे पहलेकी ही तरह हो जाते थे। तथापि हृदयके किसी कोनेमें अंकुर पड़ा ही रहता था और वहाँ वह अपना असर करता ही रहता था।

---

(४४)

यूरोपीय महायुद्ध १९१४-१८

बीसवीं शताब्दीके आरंभमें काफी कशमकश देशमें थी। पर अंगरेजी राज भी काफी मजबूतीसे जमा हुआ भारतमें देख पड़ता था। नाना

प्रकारका आन्दोलन होता था पर जहाँ गवर्मेंट उसे अपने लिये हानिकर समझती थी वहाँ उसे दबा देती थी। जनसाधारणकी जैसे पर्याप्त सहानुभूति अधिकारियोंके साथ थी। उथल-पुथल मची थी, उसका वातावरणपर काफी असर था, पर ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि इसके कारण शासनपर किसी प्रकारका संकट आ सकता है। शासनकी तरफसे यदि एक तरफ जोर-जबरदस्ती की जाती थी, निर्दयतासे क्रान्तिकारियोंको दबाया जाता था, तो दूसरी तरफ जनताके भावोंका भी-आदर किया जाता था। १९११-का दिल्ली दरबार भारतमें अंगरेजी शासनकी चरमसीमाका दर्शक था। प्रथमबार इंगलैंडके राजाने स्वयं भारत आकर अपने हाथों अपने मस्तक पर सम्राट्का ताज दिल्लीमें भरे दरबारमें रखा। साथही भारतकी राजधानी कलकत्तेसे हटाकर नयी दिल्लीमें स्थापित की। पांडवोंकी राजधानी हस्तिनापुर, मुगलोंकी राजधानी पुरानी दिल्लीको फिरसे जगाया और अपने अटल प्रभुत्वको दर्शाते हुए समुद्रतटस्थ अपने पुराने व्यापारके केंद्र कलकत्ते ऐसी विशाल राजधानीको छोड़ नयी दिल्लीको तयार करनेका हुकुम दिया। इस प्रकार भारतके मध्यमें अंगरेजी गवर्मेंटका केंद्र हो गया। यह केंद्र केवल सामाजिक जीवन और शासनचक्रका केंद्र था। इससे जनसाधारणके दुःख-सुख, व्यापार-वाणिज्य आदिसे कोई संबंध नहीं था। साथ ही जनताके भावोंके आदरके रूपमें सम्राट्ने यह भी घोषणाकी कि बंग प्रदेशका जो भंग किया गया था जिससे बंगालियोंमें बड़ी उत्तेजना थी, जिसके विरुद्ध लगातार आंदोलन १९०५ से मचा हुआ था, वह रद्द किया जाता है ओर बंगाल एक होता है। इस दरबारमें भारतके सब नरेश अंगरेज सम्राट्के नीचे बैठाये गये, इसमें देशके प्रत्येक अंगके प्रतिनिधि सम्राट्के सामने अपनेको समर्पित करनेको मौजूद थे। पर यह न समझना चाहिए कि हृदयमें कोई ज्वाला, कोई

असन्तोषकी अग्नि नहीं थी। ठीक एक साल पीछे दिल्लीमें जब इस दरबार का वार्षिकोत्सव मनाते हुए भारतके वायसराय लार्ड हार्डिङ्ग बड़े भारी जुलूस-में निकले तो भरी और सुरक्षित सड़कपर उनके ऊपर बंब गिरा। यह किसीके दिलकी चोटका सूचक था। जो कुछ हो भारतमें अंगरेजी राज-भी दृढ़तासे स्थापित था।

इस घटनाके डेढ़ वर्ष पीछे ही यूरोपमें महायुद्ध छिड़ गया। १९१४के अगस्तमें यूरोपके सब ही देश इस समरमें सम्मिलित हो गये। पर विशेष दुश्मनी इंगलेण्ड और जर्मनीकी ही थी और वे ही इसमें प्रधान प्रतिद्वन्द्वी थे। अन्य देश एक या दूसरेके सहायक थे। चार वर्षोंतक यह युद्ध चला। काफी भयंकर रूप इसने धारण किया। इसकी लपट सारे संसारमें फैली। भारतमें भी इसका काफी असर पहुँचा। थोड़ेमें जर्मनी जो अंगरेजोंका जनक था, संसारमें प्रभुत्व जमानेमें पिछड़ गया था। अंगरेजोंने सब जगह घेर रखी थी। जर्मनी इसमें हिस्सा चाहता था। वह इसके लिये अपनेको तयार कर रहा था। एक सदी पहले फ्रांससे बुरी हार खायी थी। पीछे इसका प्रतिकार भी किया गया पर दोनों देश एक दूसरेसे बहुत बुरा मानते थे। फ्रांस और इंगलैण्डकी दोस्ती थी। यह भी जर्मनीको बुरा लगता था। लड़नेकी उसने भीषण तयारी की। आखिर युद्ध छिड़ गया। इसमें कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि इंगलैंड हारना ही चाहता है पर अन्तमें अमेरिकाकी मददसे और अपने सौभाग्य, पराक्रम और दृढ़तासे अंगरेजोंने ही जीत पायी। जर्मनी हार गया। उसके राजा हट गये। वहाँ प्रजातन्त्रात्मक राज्य कायम हुआ। इंगलैंड और अन्य देशोंने भयंकर बदला लिया। जर्मनीके उपनिवेश सब छिन गये। जर्मनोंकी मातृभूमिका भी अंग भंग कर दिया गया। फ्रांससे जर्मनी-

द्वारा जीते हुए प्रदेश फ्रांसको वापस मिल गये। जर्मनीके ऊपर बड़ा भारी जुर्माना लादा गया। वह बिल्कुल ध्वस्त कर छोड़ा गया। जर्मनीको बहुत ही बुरा लगा। उसने भी बदला लेनेका प्रण किया। अपनी शक्ति बढ़ानेका भयंकर प्रयत्न करना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें उसने आश्चर्यजनक उन्नति कर डाली। वह फिर रण छेड़नेके लिये लालायित होने लगा। सब ही देश भयभीत हुए।

महायुद्धसे भारतमें व्यापार, वाणिज्य और व्यवसायकी उन्नति हुई। धन भी बढ़ा। वस्तुओंके दाम भी बढ़े। एक प्रकारसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस युद्धसे भारतको आर्थिक लाभ हुआ। युद्धके समय यहाँके अंगरेज शासक भारतीयोंसे बड़ी मिन्नत आरजूसे सहायता मांगने लगे और प्रतिज्ञा करने लगे कि यदि युद्धमें विजय हो जायगी तो हम भारतको स्वाधीन कर देंगे। भारतसे इस युद्धमें यथाशक्ति सहायता दी गयी और अन्तमें जो संधि लिखी गयी उसमें भारतके तीन प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर हैं जिनमें एक अंगरेज उच्चाधिकारी, एक भारतीय नरेश और एक भारतीय वकील-राजनीतिज्ञ हैं। इस युद्धके परिणाम स्वरूप जो राष्ट्रसंघ कायम हुआ उसके प्रारम्भिक सदस्योंमें भारत भी है। भारतीयोंका गौरव इस युद्धने बढ़ाया, संसारके राज्योंमें भारतको स्थान मिला, हमको यह भी मालूम हो गया कि अंगरेज भी मुसीबतोंमें पड़ सकते हैं, इन्हें भी प्राण-संकट हो सकता है और इन्हें भी हमारी सहायताकी आवश्यकता हो सकती है क्योंकि संसारमें इनके विकट बलशाली शत्रु मौजूद हैं। भारतसे जितने ही सैनिक युद्ध करने विदेशोंमें गये। वहाँ इनका बड़ा आदर हुआ। इनकी बहादुरीकी बड़ी प्रशंसा हुई। ये साधारण ग्रामीण लोग थे और इन्होंने दूसरे देशोंको देखकर अनुभव किया कि यूरोपियोंके बड़प्पनकी बात

केवल मायाजाल सी है। हम भी किसीसे कम नहीं हैं। इस सबका मानसिक परिणाम यह हुआ कि यूरोपियोंके परस्परके युद्धको हम अपने लिये लाभकारी समझने लगे और उसकी आकांक्षा करने लगे। उसीमें हम यह देखने लगे कि अंगरेज नमेंगे और हमारा स्वत्व हमें देंगे। इसका ज्वलन्त उदाहरण यह था कि युद्धके समय ही भारतके आन्दोलनको देखते हुए और भारतीयोंके सन्तोषार्थ इंगलेंडसे प्रभावशाली प्रतिनिधि-मण्डल भारतमें भारतसचिव श्री मांटेगूके साथ आया जिसने शासन-सुधारोंकी यह योजना उपस्थित की। एक बात इस युद्धने और की। लौटे हुए सैनिकोंद्वारा गाँव गाँव इस बातका प्रचार हो गया कि प्रत्यक्ष-दर्शियोंकी यह साक्षी है कि यूरोपीय लोग किसी बातमें भी हमसे बड़े नहीं हैं। वे भी हमारी ही तरह मनुष्य हैं और हम भी मुअवसर पाकर उनकी ही तरह हो सकते हैं। युद्धके अन्तमें अब अंगरेजोंकी जीत हुई तो भारतके साथ उनका आचरण बहुत ही अनुचित हुआ। वे अपनी प्रतिज्ञा भूल गये, भारतीयोंकी असहाय अवस्था और उनके परस्परके भेदोंसे लाभ उठाकर उनको ईप्सित राजनीतिक स्वतंत्रतासे वंचित किया और छोटे मोटे सुधारोंसे ही उन्हें एक तरफ फुसलाना चाहा, दूसरी तरफ पंजाबमें भयंकर हत्याकाण्ड कर अपनी अतुल शक्तिका भी परिचय दिया। युद्धके अन्तमें भी राजनीतिक दृष्टिसे हम एक तरह वैसेके वैसे ही रह गये यद्यपि ऊपरी दृष्टिसे ऐसा जरूर प्रतीत हुआ कि पहलेसे हमारे यहाँके कुछ श्रेणियोंके पास अधिक धन हो गया है और शासन सुधारकी तरफ गवर्मेंट ध्यान दे रही है। लौटे हुए सिपाही जो जानपर खेलकर इंगलैंडको मदद देने विदेश गये थे युद्धकी समाप्तिपर नौकरीसे हटा दिये गये जिससे भी ग्रामोंमें काफी असंतोष फैला क्योंकि वे अपनी

नौकरीसे गये और किसी दूसरे कामके न रह गये। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यूरोपीय महायुद्धके कारण जो बड़ी बड़ी क्रान्तियाँ और बड़े बड़े परिवर्तन यूरोपमें हुए उसका भी पर्याप्त प्रभाव हमारे देशके विचारवानों पर पड़ा। रूसकी नयी स्थितिने तो हमें बहुत ही प्रभावित किया क्योंकि रूस और भारतकी बहुत तुलना हुआ करती थी। वहाँका राजतंत्र नष्ट हो गया। साम्यवादके आधारपर प्रजातंत्र कायम हुआ और वहाँसे बड़ी वेगसे क्रियात्मक विचारधारा निकल पड़ी जिसे हमारे यहाँ कितनोंने ही अमृत समझ उसका पान किया और वहींकी स्थिति अपने देशमें लानेके लिये लालायित हुए। ऐसी दशामें यदि भारतकी राजनीतिने एक दूसरा नूतन और उग्र रूप धारण किया तो कोई आश्चर्य नहीं।

---

(४५)

महात्मा गांधी

साधारण तौरसे हम व्यक्तियों और तारीखोंके समूहको ही इतिहास नहीं मानते। अवश्य ही घटनाएँ मनुष्यको और मनुष्य घटनाओंको प्रभावित करते रहते हैं। घटनाओं और व्यक्तिविशेषोंको क्रमबद्ध करनेके यत्नमें तारीखोंसे काम लेना ही पड़ता है। व्यक्तिविशेषों और उनसे संबद्ध घटनाओंको तारीखोंके साथ साथ क्रमबद्ध निरूपणको ही कितनोंने इतिहास मान रखा है। हमारा यह विचार नहीं है। समयका उपयुक्त युगोंमें विभाग कर जनसाधारणके ऊपर युगविशेषमें प्रचलित विचारधाराओंके प्रभावके निरूपणको थोड़ेमें हम इतिहास समझते हैं। राजवंशावलियों

और महायुद्धोंके वर्णनमात्रको तो इतिहासका निकृष्ट अंग ही समझना चाहिए और उसे बहुत महत्व देना अनुचित सा है। पर कुछ व्यक्ति ऐसे प्रतापशाली होते हैं, उनकी छाप उनके युगपर ऐसी पड़ती है, वे इस प्रकारसे क्रान्ति कर डालते हैं और समाजको परिवर्तित कर देते हैं कि उनके नामोंका उल्लेख ऐसी ऐतिहासिक रचनाओंमें भी आवश्यक होता है जिसमें व्यक्तियोंके उल्लेखसे पर्याप्त रूपसे परहेज किया गया है। ऐसे व्यक्तिविशेष महात्मा गाधी हैं। ये अँगरेजी पढ़े लिखे हुए भारतीय हैं। वकील रह चुके हैं। देश देशान्तरोंमें रहकर काम कर चुके हैं। इन्होंने भी बहुत पैसा कमाया और खर्च किया। घर गृहस्थी भी इन्हें रही है। इनकी स्त्री और चार पुत्र मौजूद हैं। देखनेमें बड़े साधारणसे पुरुष मालूम पड़ते हैं, पर यूरोपीय महायुद्धके बादके भारतके ये प्राण हैं, ये नयी भावनाओंके स्रष्टा हैं, नये प्रकारोंके पथप्रदर्शक हैं, नयी वासनाओंके उत्प्रेरक हैं, नये आदर्शोंके निर्माता हैं, मिट्टीसे आदमी पैदा करनेवाले हैं, अतुल साहसके साथ विरोधियोंका सामना करनेवाले हैं, अपने हठपर आग्रहके साथ खड़े रहनेवाले हैं और जनसाधारणके हृदय और मस्तिष्कको अपनी तरफ आकर्षित कर अपने अनुसार उन्हें चलनेको बाध्य करनेवाले हैं। नये युगके ये प्रतीक हैं। अँगरेजी पढ़े होते हुए भी देशी भाषाएँ लिखते बोलते हैं जिससे इनके देशवासी इनकी वाणी प्रत्यक्ष सुनते और पढ़ते और समझते हैं। देश विदेश घूमकर भी ये मामूलीसे मामूली भारतीय पोशाकमें साधारणसे साधारण प्रकारसे रहते हैं जिससे इनके असंख्य देशवासी फौरन इनके निकट पहुँच जाते हैं। यूरोपीय विचारोंमें पलकर भी ये पुराने जमानेके भावोंको प्रदर्शित करते हैं जिससे ग्रामीण जनता इनसे मोहित हो जाती है। अपने लिये किसी बातकी इन्हें खोज

नहीं, एषणा नहीं। अजब जटिल इनका व्यक्तित्व है। शरीर धारण किये हुए ये स्वयं ही एक अद्भुत समस्या हैं।

महायुद्धके समय ये दक्षिण अफ्रीकासे भारत लौटे। वहाँपर भारतीयोंपर जो अत्याचार हो रहा था उसका प्रतिकार इन्होंने बड़ी दृढ़तासे किया था। अपने देशवासियोंकी सेवामें इन्होंने अपना सब कुछ दे डाला था। इन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा और अन्य ऐसे ही नामोंसे विरोध करनेका नया प्रकार निकाला था। इनका अहिंसापर अतुल विश्वास है। ये अहिंसात्मक विरोध ही पसंद करते हैं। थोड़ेमें इनका यह कहना है कि जो काम तुम नहीं पसन्द करते उसे राजाज्ञा होते हुए भी मत करो, जो पसन्द करते हो उसे अवश्य करो। यदि उसके लिये कष्ट सहना पड़े तो सहो और सहर्ष सहो। पर किसी भी अवस्था में अहिंसाका मार्ग न छोड़ो। भारतमें आते ही इन्होंने देखा कि लोगोंमें बड़ी खलबली है, इनमें स्वराज्यकी आकांक्षा है पर उसे ले सकनेकी शक्ति नहीं, साहस नहीं, और विरोधी बड़ा बलवान है, बहुतसे भारतीय भी उसके साथी हैं, और वह अपनी शक्तिका हर प्रकारसे उपयोग और दुरुपयोग कर भारतीयोंको दबाये रखनेके लिये तयार है। कुछ कालतक तो छोटे छोटे क्षेत्रोंमें ये अपने अहिंसात्मक सत्याग्रहका प्रयोग करते रहे। चम्पारण्य (बिहार) में अंगरेज व्यवसायियोंके विरुद्ध इन्हें सफलता भी मिली। अच्छे और योग्य भारतीयोंका इन्हें सहयोग भी मिलने लगा। दक्षिण अफ्रिकासे ही ये काफी यश लेकर आये थे। भारतमें भी इनका प्रभाव बढ़ने लगा पर पुराने राजनीतिक कुछ परेशान हुए। ये नये तरीके उनकी समझमें नहीं आये। वे महात्माजीके आदर्शोंको भी नहीं समझ सके। उन्हें अपनेसे पृथक रखने का ही यत्न किया। कहा कि

भारत दक्षिण आफ्रिका नहीं है। विदेशमें बसे हुए छोटे से भारतीय संघटित समुदायके हितार्थ सफलता पूर्वक जो कार्यप्रणाली काममें लायी जा सकती है वह उन्हीं भारतीयोंकी जन्मभूमिमें नहीं प्रयुक्त की जा सकती। पर जब पंजाब-काण्ड हो गया, जब सब लोगोंके ऊपर एक प्रकारसे वज्रपात हुआ, जब आगेका कोई रास्ता ही नहीं देख पड़ने लगा, जब सब पुराने मार्ग बन्द हो गये और पुराने प्रकार रोक दिये गये, तब महात्मा गांधीका युग आरंभ हुआ, सब इनकी ही तरफ चले और इनके हाथोंमें देशने एक प्रकार से अपनेको सिपुर्द कर दिया, कि आप ही हमारा उद्धार कीजिए, आपके ही बतलाये मार्ग पर हम चलेंगे। हमारी परीक्षा कीजिए, हम देशके नाते आपकी सेवामें सब कुछ सहेंगे, पर जैसे हो इस असह्य दासताकी दुर्दशासे हमें बचाइए।

---

(४६)

राजनीतिक सुधार

पंजाबका हत्याकाण्ड और राजनीतिक सुधारकी तारीख एक ही है। ब्रिटिश नीतिका आदर्श भूतपूर्व भारतसचिव, इंगलैंडके मान्य दार्शनिक और राष्ट्रनेता, कितने ही भारतीय राजनीतिज्ञोंके आध्यात्मिक गुरु, लार्ड मार्ले पहले ही बतला गये हैं कि दमन और सुधार साथ साथ चलना चाहिए। दमन से सबपर यह प्रभाव रहेगा कि गवर्मेंटके साथ दिल्लगी नहीं की जा सकती, उसकी आज्ञाका भंग करनेवाला बुरी तरहसे पिटेगा, उसका विरोध करनेवाला पछतायेगा। पर साथ ही साथ राजनीतिक सुधार भी होना चाहिए जिससे जो भारतीय इंगलैण्डके

मित्र हैं उन्हें यह भय न हो कि हमारा तो कोई अस्तित्व ही नहीं है, वे निराश न हों कि हमारे लिये अँगरेज कुछ न करेंगे। विरोधीके दमनके साथ साथ यदि सुधार होता जाय तो समझदार शान्तिप्रिय लोगोंकी सहानुभूति विरोधियोंके प्रति नहीं रहती और यदि सुधारद्वारा प्रभावशाली श्रेणियोंको अपनी आकांक्षा पूरी करनेका साधन मिलता है तो शासनकी नींव और भी दृढ़ होती है। पंजाबकाण्डने यह दिखलाया कि जिस जातिने जर्मनों पर विजय पाकर उन्हें यूरोपमें त्रस्त कर रखा है वही जाति अपने पराजित भारतीयोंसे डर नहीं सकती और वे यदि विरोध करेंगे तो उनका भयंकर दमन भी होगा। जालियानवाला बागमें गोली चलाकर और वहीं की एक गलीमें लोगोंको पेटके बल रेंगवाकर यह सिद्धान्त स्थापित हो गया। पर युद्धके अन्तमें स्वराज देनेकी भी प्रतिज्ञा थी। वह भी झूठी नहीं होनी चाहिए। उसे ही पूरी करनेके लिये भारतसचिव अपने मण्डल सहित घूमे थे और उन्होंने एक सुन्दर सा विवरण भी तयार किया जिसके आधारपर नये शासन सुधारोंकी भित्ति खड़ी की जानेका प्रबंध होने लगा।

स्वराज्यका तो मोटे तौरसे यह अर्थ किया जा सकता है कि देश-विशेषके वासीगण जिस प्रकारकी चाहें अपने यहाँ शासनव्यवस्था करें। वे चाहे एकाधिकारी राजतंत्र कायम करें अथवा लोकमतावलंबित राष्ट्रपतितंत्र कायम करें। पर भारतमें जब राजनीतिक सुधारकी चर्चा होती है तो उसका अर्थ यह है कि शासनमें, निर्वाचित और नियोजित रूपसे भारतीयोंका समावेश किया जाय। अधिकाधिक अधिकार भारतीयोंके हाथमें आने और भिन्न भिन्न प्रकारकी निर्वाचित शासन संस्थाएँ बनायी जायँ। उदाहरणार्थ ग्रामों और शहरोंके नागरिक जीवनके

व्यवस्थार्थ निर्वाचित सदस्य म्युनिसिपलटियों और जिला बोर्डोंमें जायँ और वे निर्वाचकोंके हितकी दृष्टिसे सब प्रबन्ध करें। ये समय समय पर बदले जायँ। व्यवस्थापक सभाओंमें निर्वाचित भारतीय रहें और पर्याप्त संख्यामें रहें जिससे जनसाधारणके हितके कानून बन सकें, प्रबन्धकोंपर कड़ी निगाह रखी जाय, अनाचार अत्याचार तुरन्त प्रकाशित किया जाय, लोगोंकी हैसियतके अनुसार ही कर बैठाया जाय और उस करसे प्राप्त धन देशोपकारी कार्योंमें व्यय किया जाय, अधिकारी गण पर्याप्त अनुशासनमें रहें और उनके ही ऐश आरामके लिये देश न समझ लिया जाय। १९१९में भारतके शासनके लिये जो नया विधान इंगलैंडकी पार्लमेंटने बनाकर भेजा उसमें यही सब व्यवस्था की गयी थी कि अधिक संख्यामें गाँवों और नगरोंसे प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभाओंमें चुने जायँ, निर्वाचकोंकी संख्या भी बहुत बढ़ा दी जाय, शासनके कुछ विभाग निर्वाचित लोगोंमेंसे नियोजित मंत्रियोंके अधीन कर दिये जाँय और इस प्रकारसे अर्ध लोकतंत्रात्मक आधारपर अर्ध स्वराज्यके रूपमें द्विचक्रतंत्र शासन आरम्भ किया जाय। इसकी सफलतापर आगेकी प्रगति निर्भर करेगी। १९२०में नये निर्वाचनोंका प्रबन्ध भी हो गया। बहुतसे भारतीयोंकी मुर्झाई आशालता फिर जाग उठी और उन्होंने समझा कि बड़े सुन्दर और उज्वल भविष्यका सूत्रपात हो रहा है। वे इन सुधारोंमें सम्मिलित होनेको तयार हो गये। उन्होंने ईमानदारीके साथ समझा कि हमारी असहाय अवस्थामें इससे अधिक हमें मिल भी नहीं सकता था और हम इनके ही द्वारा अपने पुराने दुःखोंको दूर कर सकेंगे।

पर उधर महात्मा गांधी और उनके प्रभावमें आये हुए दूसरे श्रेष्ठ

भारतीयोंके नेतृत्वमें दूसरी ही विचारधारा चल रही थी। उसीकी तरफ अधिक लोग आकर्षित हो रहे थे। नये शासन सुधारसे देशनेमें लाभ बहुत थोड़ेसे ही लोग उठा सकते थे। उनके भाव चाहे कितने ही शुद्ध हों, वे चाहे सर्वसाधारणकी ही सेवा अपने नये पदोंके अधिकारोंद्वारा करना चाहें, पर जनता उनकी तरफसे सशंक ही थी, उन्हें स्वार्थी ही समझती थी क्योंकि वे बहुवेतनभोगी अधिकारके पदोंपर पहुँच गये। वह ऐसे लोगोंकी तरफ चली जो इन सुधारोंसे विमुख होकर उसके कष्टोंमें सहानुभूति दर्शाकर, कार्यतः उसकी सेवा करते हुए स्वयं कष्टमें पड़नेको तयार थे। पंजाबकाण्डके प्रतिकार स्वरूप महात्मा गांधी और उनके साथियोंने थोड़ीसी माँगें पेश कीं। ये भी शासकोंने ठुकरा दीं। तब तो जैसे यह स्पष्ट हो गया कि सुधार और शक्तिप्रदान सब विडंबनामात्र है, वास्तविक शासनाधिकार अभी वहीं है जहाँ पहिले था, उसमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है और जब तक वहाँ परिवर्त्तन न होगा तबतक कोई लाभ देश और देशकी जनताका नहीं हो सकता। महात्मा गांधीकी आज्ञा थी कि नये सुधारोंसे मुह मोड़ लेना चाहिए, गवर्मेंटसे असहयोग करना चाहिए, उसकी अदालतोंमें न जाना चाहिए, उसके शिक्षालयोंका बहिष्कार करना चाहिए, उसकी उपाधियाँ और अवैतनिक पदोंको छोड़ देना चाहिए। साथ ही उनकी यह भी आज्ञा हुई कि कांग्रेसकी शक्ति बढ़ानी चाहिए, उसके कोषमें पर्याप्त धन होना चाहिए, उसके सदस्योंकी संख्या अनन्त होनी चाहिए, उसका अनुशासन जबरदस्त होना चाहिए। यह भी गांधीजीकी आज्ञा थी कि अपनेमेंसे सब दोषोंका निवारण करो अपनी त्रुटियोंके लिये तुम खुद जिम्मेदार हो, उन्हें दूर करो, दूसरोंको अपने दुखोंके लिये दोष मत दो, तुम ही दोषी हो, अपनी त्रुटियोंको

समझकर उन्हें हटानेसे ही तुम्हारा अभ्युदय हो सकता है, तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है। शराब पीना छोड़ो, साम्प्रदायिक एकता स्थापित करो, अस्पृश्यताका निवारण करो, खादी पहनो, भाईको भाई मानो, घरके उद्योग धंधोंको बढ़ाओ, अपने पैरों पर खड़े हो, दूसरेका मुहँ मत ताको। सारांश महात्मा गांधीकी आज्ञा है कि पूर्ण स्वराजके लिये तयार हो, उसके योग्य बनो, उसके लिये प्रयत्नशील हो, उससे कमसे कोई लाभ नहीं है, उससे कममें कोई मौलिक समस्या नहीं हल होगी।

---

(४७)

साम्प्रदायिक समस्या

भारतमें साम्प्रदायिक समस्याके नामसे एक बीभत्स विभीषिका आये दिन स्थान स्थानपर अपना सिर उठाया करती है। समाचारपत्रोंमें, पुस्तकोंमें, सार्वजनिक भाषणोंमें, परस्परकी बातचीतमें इसकी चर्चा सदा और सर्वत्र रहती है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनको यह दूषित किये हुए है, सार्वजनिक जीवनको यह असंभव करती रहती है और देशकी उन्नतिकी यह भयंकर बाधक है। यह है क्या चीज इसे भी समझ लेना चाहिए। साधारणतः हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ोंको इस समस्याके नामसे पुकारा जाता है। प्रधानतः यह सत्य भी है क्योंकि ये ही दो समुदाय अधिक संख्यामें देशमें वास करते हैं और देशमें प्रभुत्व पानेके लिये इन्हीं दोनोंमें संघर्ष होता हुआ दिखलाई भी देता है। कमसे कम देशके बहुतसे झगड़ोंको हिन्दू-मुसलमानकी प्रतिद्वंद्विता या दंगा बतलाया भी जाता है। पर वास्तवमें यह केवल हिन्दू और मुसलमानके ही बीचमें नहीं है।

हिन्दुओंके भिन्न-भिन्न वर्णों और उपवर्णोंमें भी यह काफी जोर मारता है और यह देखा गया है कि परस्परके विरोधके कारण हिन्दुओंकी ही भिन्न भिन्न जातियाँ और उप-जातियाँ एक दूसरेकी पराजयकी इच्छासे मुसलमानोंको अपना लेती हैं। मद्रासमें हिन्दुओंके ही भीतर ब्राह्मण अब्राह्मणका बड़ा भयंकर विरोध और संघर्ष है। मुसलमानोंमें शीया और सुन्नीके बीच कुछ मजहबी कृत्योंके नाम कभी-कभी झगड़ा होता रहता है जैसे हिन्दुओंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें भी मारपीट हुआ करती है। यह तो मान ही लेना होगा कि मनुष्य समाज सदा और सर्वत्र शान्तिके साथ नहीं रह सकता। कुछ न कुछ झगड़ा तो होता ही रहेगा। कोई न कोई बहाना लोग खोज ही लेंगे जिससे आपसमें झगड़ें। पर भारतमें जैसा भीषण रूप साम्प्रदायिक समस्या लेती चली जा रही है उसकी उपेक्षा करना भयावह होगा।

मुगल शासनके अन्तमें भारतके सभी सम्प्रदायों और समुदायोंने एक नयी समाज-व्यवस्थाके अनुरूप अपनेको कर लिया था। भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न वर्ग विभक्त हो गये थे। सब अपने पुश्तैनी पेशे करते थे, सब एक दूसरेकी आवश्यकता पूरी करते हुए, अपने कर्तव्यों और अधिकारोंकी हिफाजत करते हुए चले जा रहे थे। राजकार्यमें सब ही सम्प्रदायोंके योग्य व्यक्ति लिये जाते थे और उनका भी अच्छा प्रभावशाली वर्ग स्वभावतः बन रहा था। पर इस राजकार्यके लिये नयी स्थितिमें विशेष योग्यता हिन्दुओंके उच्च वर्गोंने ही प्राप्त की और जब इस वर्गने विशेष प्रभाव पाया और इस वर्गमें जानेके लिये कहनेको सबके ही लिये मार्ग खुला हुआ देख पड़ा, तो इसीमें घुसनेकी आकांक्षा सबको होने लगी। जो इसमें पहले पहुँच गये थे उनसे द्वेष पैदा हुआ और यदि कुछ न मिला तो जातिगत और सम्प्रदायगत अपशब्दोंका प्रयोग

होने लगा। अपनी स्थितिसे असन्तोष, दूसरोंके पदको पानेकी अभिलाषा, अधिकार प्राप्त लोगोंसे ईर्ष्या, अपने लिये विशेष प्रबन्धकी आकांक्षा, पदारूढ़ लोगोंकी दूसरोंकी तरफ उपेक्षा और अपनी जातिवालोंकी तरफ पक्षपात, शासनपदोंपर आरूढ़ लोगोंके पास हर साधनका होना और दूसरोंका उनसे वञ्चित रहना—ये ही सब कारण हैं जिनसे साम्प्रदायिक समस्या पैदा हो गयी। अपना बड़प्पन, अपनी जातिका गौरव, अपने सम्प्रदायका सौन्दर्य तो पीछे देख पड़ा—पहले यही आकांक्षा हुई कि हम किसी प्रकारसे ऊँचे पदोंपर पहुँच जायँ। इसके लिये कुछ रूपक तो खड़ा करना ही पड़ेगा। सबसे सहल रूपक अपनी जातिविशेष या सम्प्रदायविशेषका संघटन करना था। परस्परका द्वेष उभाड़ना भी कठिन नहीं था जब सम्प्रदाय-सम्प्रदायके बाहरी रूपमें काफी फरक दिखलाया जा सकता था और यही सरलतासे एक दूसरेके विरुद्ध विद्रोहकी अग्नि लगायी जा सकती थी। भारतके वातावरणमें ही अनिवार्य रूपसे जाति और वर्ण पड़ा हुआ है। उनके नामसे झगड़ा बातकी बातमें हो सकता है। परस्परमें विवाह सम्बन्ध न हो सकनेके कारण और एक दूसरेमें अस्पृश्यता बनी रहनेके कारण आपसकी सहानुभूतिकी कमी रही और आपसके मेल-मिलापकी सम्भावना भी न हो सकी।

यद्यपि हिन्दू-मुसलमानकी ही साम्प्रदायिक समस्याकी चर्चा है पर वास्तवमें साम्प्रदायिकता हमारी रग-रगमें घुसी हुई है। जिस जगह देखिए किसी न किसी बहाने जातिगत और सम्प्रदायगत झगड़े और मनोमालिन्य खड़े हो जाते हैं और एक दूसरेपर पक्षपात करनेका अभियोग लगाने लगते हैं। पर हिन्दू और मुसलमानका ही झगड़ा सबसे अधिक होता रहता है और सबसे ज्यादा भीषण तथा बीभत्सरूप धारण करता है। मुसलमान

अधिकाधिक स्थान सरकारी नौकरियोंमें चाहते हैं और इसी प्रकार अधिकाधिक स्थान निर्वाचित संस्थाओंमें भी चाहते हैं जिससे वहाँसे अपने प्रभावद्वारा अपने सम्प्रदायके अधिकाधिक लोगोंको नौकरी दिला सकें। इस माँगको हिन्दू केवल हल ही न कर पाये पर देखा-देखी अपने ही भीतर नानाप्रकारकी साम्प्रदायिकता को उन्होंने जाग्रत कर दिया और इस भयसे कि कहीं अंगरेजोंके बाद मुसलमानोंका राज्य फिर न आ जाय हिन्दुओंकी ही प्रचुरता और प्रभुताके लिये प्रयत्नशील हो गये। हिन्दू जितना मुसलमानोंके राज्यसे डरते है उतना अँगरेजोंसे नहीं, मुसलमान जितना हिन्दुओंके राजसे डरते हैं उतना अँगरेजोंसे नहीं। अवश्य ही ऐसी स्थितिसे अंगरेजोंने पर्याप्त लाभ उठाना चाहा और उठाया, पर इससे उनका वास्तविक स्थायी लाभ कुछ भी न हो सका क्योंकि प्रजाके प्रधान समुदायोंमें इस प्रकारकी परस्परकी दुश्मनीसे अंगरेजी राजकी नीव कुछ मजबूत न हुई। यद्यपि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायसे अंगरेजोंको ही अधिक पसन्द करता था पर यह नहीं चाहता था कि अंगरेज स्थायी रूपसे यहाँ बने रहे। सब ही अपना देश अपने लिये चाहते हैं और मनके भीतर सबके ही यह ख्याल है कि अंगरेज एक दिन चले जाँयगे, वे सदा भारतमें नहीं रह सकते, पर हिन्दू-मुसलमान सदा ही भारतमें रहेंगे, उन्हें विवश होकर साथ रहना होगा, उनका परस्परका समझौता हो जाना निहायत जरूरी है और उचित रूपसे देशके साधनोंमें, देशके शासन और राष्ट्रीय जीवनके सब अंगोंमें भाग लेना ही सबके लिये श्रेयस्कर है। परस्पर समझौतेके जितने प्रस्ताव हुए, समस्याको हल करनेकी जितनी कोशिश हुई, यहाँतक कि भारतको विभक्त कर दो राष्ट्र-कर देने और एक सम्प्रदायको दूसरे सम्प्रदायके ऊपर सर्वाधिकार

दे देने — इन सभी प्रस्तावोंके मूलमें यही भाव है कि हमें किसी न किसी प्रकारसे परस्परका समझौता कर ही लेना चाहिए जिससे आगेका झगड़ा निपटे। दुःख तो यह है कि राजकार्यमें लाभ कम ही लोग उठा सकते हैं पर उनकी आकांक्षाको पूरा करनेके लिये बहुतसे गरीब मरते हैं, कटते हैं और देशका साधारण आर्थिक और सामाजिक जीवन नष्ट भ्रष्ट होता है।

(४८)

औपनिवेशिक पद और पूर्ण स्वराज

भारत तो एक प्रकारसे समस्याओंका अजायबघर है। अन्य देशोंमें भी समस्याएँ होती हैं। पर वहाँपर समस्याओंको हल करनेका प्रयत्न लगातार किया जाता है और कोई भी समस्या अनन्त कालतक पाली नहीं जाती। यहाँ तो समस्या बहुत जल्दी पैदा हो जाती है पर वह हल नहीं होती। प्रत्येक झगडा रगड़ाके रूपमें अनन्त कालके लिये बना रहता है। हमारे यहाँपर दरिद्रता, अज्ञानता, और बीमारीकी समस्याएं तो हैं ही, साथ ही साम्प्रदायिक समस्या भी भीषण रूपमें उपस्थित है। सर्वोपरि देशकी स्वतंत्रताकी समस्या है। कुछ लोग समझते हैं कि अंगरेजोंको यहाँ बनाये रहना चाहिए, ये जाना चाहें तो भी नहीं जाने देना चाहिए क्योंकि हम असहाय हैं और यदि इनकी रक्षा हमारे ऊपरसे उठ जायगी तो न जाने हमारी क्या हालत हो जायगी। हमारा इनका संबंध स्थायी होना चाहिए। हमें इनके साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक पदको प्राप्त करनेकी लालसा रखनी चाहिए। औपनिवेशिक पद उसे कहते हैं जो अंगरेजोंके उपनिवेशोंमें प्रजाका होता है। कैनडा, दक्षिण अफ्रिका, आस्ट्रेलिया आदि

के आदिम निवासियोंको नष्टकर अंगरेज वहाँ बसे। यह देश इन्हींका हो गया। वे वहाँके राजा ही नहीं वाशिन्दे भी हो गये। यह तो स्वाभाविक ही था कि वे इन नये स्थानोंमें भी वही भाव, वही भाषा, वही रहन सहन रखते जो उनके प्रारंभिक देशके थे। उनके यहाँ भी इंगलेंडकी ही तरह स्वराज है, प्रजातंत्रात्मक स्वशासन है। अंगरेजोंसे उनका संबन्ध यह है कि अंगरेजी राजाको वे भी अपना राजा मानते हैं और इस राजाका प्रतिनिधि अपने यहाँ सम्मान सहित रखते हैं जो राजाकी तरफसे राजपत्रों पर आवश्यक हस्ताक्षर आदि कर देता है। अब तो उपनिवेशोंको इतना अधिकार मिल गया है कि वे अलगसे सन्धि विग्रह भी कर सकते हैं और इंगलेंडकी लड़ाई और सुलहमें चाहे सम्मिलित हों चाहे न हों।

बहुतसे भारतवासी यही स्थिति अपने यहाँके लिये चाहते हैं पर उनका क्या ठीक अभिप्राय है, समझमें नहीं आता। हम अंगरेज नहीं हैं, हम अंगरेजोंसे पराजित देश हैं और पराजितोंकी ही तरह हमारे ऊपर अगरेज राज्य करते हैं और अधीन हैसियत देकर बहुतसे भारतीयोंसे अपने शासन कार्यमें मदद भी लेते हैं। विचारवान राजनीतिज्ञ कहते हैं कि हम तो उपनिवेश नहीं हैं इस कारण उपनिवेशका पद प्राप्त करना हमारे लिये कोई मानी नहीं रखता। वेश्याको पत्नीका पद नहीं दिया जा सकता। यदि दिया जाय तो उसका कोई अर्थ नहीं है। या तो संबंध उपहास्य हो जाता है या ऐसे पेंच पैदा करता है कि अपनेको और उसको सम्हालना कठिन हो जाता है। यद्यपि कहनेको केवल विवाहके कुछ कानूनी या धार्मिक बाह्य कृत्योंके होने न होनेका ही अन्तर होता है और किसी बातमें कोई फरक दोनों संबंधमें नहीं है तथापि समाज और कानून दोनों ही फरक मानते हैं जिसका प्रभाव मनुष्यकी मनोवृत्तिपर

पड़ता ही है। यह पूछना अनुचित न होगा कि इस औपनिवेशिक पदमें भारतमें अँगरेज रहेंगे या नहीं और अगर रहेंगे तो उनका क्या स्थान होगा। क्या वे छोटे बड़े सब पेशोंमें सम्मिलित होंगे? क्या वे यहाँ पर श्रमजीवी भी होंगे? ऐसा संभव नहीं है। वे रहेंगे तो ऊँचे पदोंपर शासक या विशेष अधिकारमात्रके रूपमें ही रहेंगे क्योंकि वे कदापि यहाँ पर इतनी संख्यामें स्थायी रूपसे बसेंगे ही नहीं कि सब वर्गोंमें समाविष्ट हो जायँ। अगर वे इस प्रकार नहीं रहेंगे तो फिर औपनिवेशिक पदका हमारे लिये अर्थ ही क्या हो सकता है। यदि हम अपनी सेना रख सकेंगे, अपने राष्ट्रीय धनपर पूरा अधिकार रख सकेंगे, यदि हम प्रान्त-प्रान्तमें, देशी राज्योंमें और अन्य प्रदेशोंमें सम्बन्ध कर सकेंगे, यदि विदेशोंसे सन्धि-विग्रह कर सकेंगे, यदि हमारे ऊपर ही अपनी रक्षा करने न करने की पूरी जिम्मेदारी रहेगी तो राजनीतिज्ञ पूछता है कि हम क्यों किसी दूसरे देशके राजाको नामके लिये भी मानने जायँ, हम उसका प्रतिनिधि अपने देशमें क्यों रहने दें? शब्दोंकी विडंबना में हम क्यों पड़ें? हमारे लिये औपनिवेशिक पद यदि कोई अर्थ रखता है तो वह पूर्ण स्वराज ही हो सकता है और उसीपर दत्तचित्त रहना उचित है।

पर अपनी अनन्त समस्याओंके बीच, अपनी असहाय अवस्थामें, अपनी दरिद्रता और अज्ञानतामें पड़े रहकर हम इस पूर्ण स्वराजको कैसे पा सकते हैं? उसका विचार करना भी हम कैसे व्यवहार्य समझ सकते हैं। असहाय होनेके कारण न हम अँगरेजोंको हटा सकते हैं, न दूसरे देशोंसे अपनेको बचा सकते हैं। हम आन्तरिक शान्ति स्थापित रखनेकी भी जैसे क्षमता नहीं रखते। दरिद्रताके कारण इस समयके

वैज्ञानिक आविष्कारोंसे भी हम लाभ नहीं उठा सकते। उसमें तो बड़ा व्यय होता है। हम कहाँ जंगी जहाज समुद्र या हवाके लिये बना सकते हैं, हम कहाँ टैंकोंको स्थल युद्धके लिये तयार कर या करा सकते हैं। अज्ञानताके कारण हम अपने प्राकृतिक साधनोंका कहाँ सदुपयोग कर सकते हैं? हम अपनी असंख्य जनताको कैसे सम्हाल सकते हैं? हमको अवश्य ही पूर्ण स्वराज चाहिए। उसीसे हमारे दुःखोंका अन्त होगा, हमारी समस्याओंका हल होगा, उसीसे हमारे परस्परके भेद दूर होंगे, उसीसे हम एकता समता कुशलता सीखेंगे। पर साथ ही जब हममें स्वराज्योचित गुण न आवेंगे तब हम स्वराज्य प्राप्त भी न कर सकेंगे, हम अपनी गुत्थियोंमें ही पड़े रहेंगे, हम फटफटायेंगे पर कुछ कर न सकेंगे, हम दुःखी होंगे पर अपने दुःखका शमन न कर सकेंगे, हम विचारोंमें उत्तमोत्तम आदर्श पैदा करेंगे पर कार्यतः उसे न प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे चक्रमें हम पड़ गये हैं। यह हो तो वह हो, वह हो तो यह हो। न यह होता है न वह होता है। हम भ्रमरमें पड़े हुए बहे चले जा रहे हैं। स्थिति गम्हलती है, हम बिगाड़ देते हैं। हमें सफलता मिलती है, हम अवसर खो देते हैं। हमें शान्ति नहीं, संतोष नहीं, आनन्द नहीं। हम विवश होकर कहीं चले भर जा रहे हैं। पर स्वराज तो हमको मिलना ही चाहिए। स्वराज और स्वराज्योचित गुण साथ ही साथ चल सकते हैं। एक दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। उन सांसारिक शक्तियोंसे जो इस समय मुक्त होकर विचर रही हैं, हम लाभ उठाकर स्वराज और स्वराज्योचित गुण एक साथ ही पा सकते हैं। हमें उसी तरफ प्रवृत्त होना चाहिए।

---

(४९)

दूसरा यूरोपीय महायुद्ध

१९१४-१९१८के यूरोपीय महायुद्धके बाद भारतकी आन्तरिक राजनीतिक स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो शक्तियाँ करीब आधी शताब्दीसे काम कर रही थीं वह तीव्र ही होती गयीं। महायुद्धके परिणाम स्वरूप जो विचारधाराएँ संसारमें संचरित हो गयी थीं उनका भी विशद प्रभाव हमारे नवयुवक विचारकोंपर पड़ा। महायुद्धके समाप्त होनेके साथ ही साथ दूसरे युद्धकी तयारी होने लगी। जिस वर्साईकी संधिसे युद्ध समाप्त हुआ था वह कुछ ऐसी बेढ़प और बेढंगी थी कि उससे किसीको भी संतोष न हुआ। अमेरिकाके ही कारण युद्ध समाप्त हो सका था, उसीके राष्ट्रपति वुडरो विल्सनके प्रस्ताव पर राष्ट्रसंघकी स्थापना हुई थी, पर अमेरिका ही उस संघमें नहीं सम्मिलित हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षोंको संघ मिटानेमें असमर्थ रहा। जो राष्ट्र जैसा चाहते थे कार्य करते थे। बड़े बड़े राष्ट्र एक एक कर संघको छोड़ते ही गये। फिर जर्मनीको इतना दबानेकी आयोजना की गयी थी कि वहांके लोग क्रोधाग्निसे प्रज्वलित रहने लगे और बदला लेनेके भावसे ही अपनी राष्ट्रीय शक्तिके संघटनमें जुटकर लग गये। नये युद्धकी तयारी ही तयारी चारो तरफ देख पड़ रही थी। भारतमें एक तरफ नयी सुधार-योजनाके अनुसार व्यवस्थापक सभाओंका सघटन हुआ जिसमें देशके कुछ सम्मानित और प्रतिष्ठित लोगोंका सहयोग हुआ, दूसरी तरफ पंजाबकाण्डने भारतको ऐसा सबक सिखलाया कि देशके प्रधान नेताओंने यही समझा कि पृथकसे संघटन करने, आन्तरिक शक्ति बढ़ाने, गवर्मेंटसे यथासम्भव

असहयोग करनेमें ही हमारे अभीष्टकी सिद्धि है। बीच बीचमें इनके नेतृत्वमें उग्रवादी लोग भी व्यवस्थापक सभाओंमें चले जाते थे और वहाँसे गवर्मेंटका यथासम्भव विरोध करते थे। भारतीय राजनीतिज्ञोंमें परस्परका घोर मतभेद होगया जिसके कारण हृदयभेद तककी नौबत आयी। १९२१में इंगलैंडके युवराज जब भारतमें आये तो उनका उग्रदलकी तरफसे, जनताकी सहायतासे बहिष्कार किया गया। इस समय नयी शासनयोजनाके अनुसार हमारे कितने ही पुराने नेतागण वास्तवमें गवर्मेंट-में सम्मिलित थे। जब राष्ट्रीय आंदोलनका बड़ी कड़ाईसे दमन हुआ तब अधिकारारूढ़ इन पुराने राजनीतिज्ञोंकी इसके कारण बड़ी बदनामी भी हुई।

कशमकश, खींचातानी, लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज सब जारी रहा। भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसका बल बहुत बढ़ा। इसके सदस्य गाँव गाँवमें होगये। इसकी संघटित समितियाँ चारों ओर प्रभावशाली हो गयीं। कितने ही भारतीय इसकी ही तरफ नेतृत्वके लिये उत्सुकतासे देखने रहे। अन्य दलोंमें इसके कारण ईर्ष्या भी हुई पर कांग्रेसवालोंके आत्मत्यागसे काम करनेके कारण और हर तरहकी मुसीबत बरदाश्त करनेको तयार रहनेके कारण इनमें और इनकी कार्यप्रणालीमें कितने ही दोषोंके होते हुए भी इनका जोर बढ़ता ही गया। इनके आपसके झगड़ोंके कारण जो कुछ कमजोरी इनमें आवे, बाहरके लिये तो ये ही सबसे अधिक शक्तिमान देख पड़ते थे। इन्होंने महात्मा गांधीको अपना एकमात्र नेता मान रखा था और गलत या सही उनके कहनेके अनुसार ये चलते थे। इन्हें यूरोपमें भड़कते हुए युद्धके बादल सबसे पहले देख पड़े और बार बार युद्धसम्बन्धी निर्णय कांग्रेसके जलसोंमें हुआ। पर उसके लिये कोई तयारी नहीं की गयी। युद्ध आखिर हम क्या करें यह नहीं

बताया गया । इस बीचमें नमक सत्याग्रहके नामसे १९३०में एक वृहत् देशव्यापी आंदोलन भी छेड़ा गया । उसका काफी प्रभाव पड़ा । इंगलैंडमें गोलमेज सम्मेलन किया गया जिसमें भारतके नियोजित प्रतिनिधियोंसे इंगलैंडकी गवर्मेंटने भारतमें नये शासनसुधारोंके सम्बन्धमें बातें कीं । दूसरे सालतक कांग्रेस और गवर्मेंटका समझौता हुआ और १९३१ के दूसरे गोलमेज सम्मेलनमें कांग्रेसके प्रतिनिधि होकर महात्मा गाँधी भी इंगलैंड गये । पर न उस सम्मेलनका कोई असर कांग्रेसपर पड़ा, न समझौतेको ही गवर्मेंट माननेको तयार थी और साल भरके भीतर ही समझौता टूट गया और करबन्दोके नामसे दूसरा आंदोलन आरम्भ हो गया । इन सब सत्याग्रह आंदोलनोंका यही रूप था कि किसी सरकारी कानून या आज्ञाका भंग किया जाता था और सहस्रोंकी संख्यामें कांग्रेसवादी जेल जाते थे । कांग्रेसवालोंकी तरफसे कोई हिंसात्मक कार्रवाई नहीं होती थी । सब जोर-जबरदस्ती, मारपीट, लाठी, गोली प्रायः गवर्मेंटकी ही तरफसे होनेको छोड़ दिया जाता था । यही महात्मा गांधीके आन्दोलनका सिद्धान्त है । उनके विचारसे इससे हममें नैतिक बल आता है, विरोधीपर नैतिक प्रभाव पड़ता है, संसारकी सहानुभूति हमें मिलती है, विरोधी लज्जावश अलग हो जाता है । १९३१ वाला आन्दोलन करीब २॥ वर्ष जारी रहा । फिर शिथिल होने लगा । कांग्रेसवाले व्यवस्थापक सभाओंमें लौटे और पहलेकी तरह वहाँसे विरोध करते रहे । दोनो तरफ मनमें कर्कशता बनी रही पर समझौतेकी इच्छा भी साथ ही बनी रही । १९३३ मे गोलमेज सम्मेलनोंके परिणामस्वरूप फिर नये सिरेसे भारतके लिये सुधारकी शासन योजना तयार की गयी और प्रान्तीय शासन संबंधी इसका अंश १९३६ मे कार्यान्वित किया गया । इसकेद्वारा निर्वाचकोंकी संख्या

और बढ़ा दी गयी, व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचित सदस्योंमेंसे ही प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल बनने लगे। भारतके ११ प्रान्तोंमें ८में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना। प्रधान अधिकार इङ्गलैंडकी ही गवर्मेंटके हाथमें रहा तथापि प्रान्तोंके मन्त्रियोंको भी काफी अधिकार मिला। कांग्रेसकी कार्य-समितिके अधीन ये कांग्रेस मन्त्रिमण्डल काम करने लगे। अँगरेजी गवर्मेंटके प्रतिनिधि प्रान्तके गवर्नरसे और मन्त्रियोंसे झगड़ेकी सम्भावना सदा बनी रही। केंद्रका शासन पहलेकी ही तरह चलता रहा क्योंकि उसके सम्बन्धकी योजना ऐसी पेचीली थी कि वह किसीको पसन्द न थी और उसकी स्थापनाके लिये ऐसी शर्तें थीं कि वह पूरी न हो सकीं।

आखिर टालते टालते १९३९में यूरोपका दूसरा महायुद्ध आरम्भ हो ही गया। इंगलैंडके तात्कालिक प्रधानमन्त्री श्री चेंबरलेनने इसे दूर रखनेका यत्न किया पर कुछ हुआ नहीं। आग भीतर भीतर लग चुकी थी, वह भभक उठी। कई वर्षों पहलेसे जापान चीनसे युद्ध कर रहा था। उसका हाहाकार एशियामें मचा ही था। इधर यूरोपमें भी युद्ध छिड़ गया। युद्धने आरंभसे ही भीषण रूप धारण किया। हवामें, पृथ्वीपर, जलमें रणचण्डी मृत्यु ही मृत्यु फैलाने लगी। भारतने इस भीषण स्थितिमें भी अपनेको असहाय और अप्रस्तुत पाया। कांग्रेसके सामने युद्धकी सम्भावना कितने ही वर्षोंसे थी पर क्या किया जाय, क्या न किया जाय, इसपर कोई विचार नहीं करता था। महात्मा गांधीकी विचारधारा अस्त्रशस्त्र, रण, रक्तपात आदिके स्रोतोंमें नहीं बहती। वे ही अनन्य नेता थे। इस कारण कार्यतः कांग्रेस इस भीषण युद्धके सामने कुछ न कर सकी। कुछ लोगोंका विचार हुआ कि हिटलर ऐसे जर्मनीके अनन्याधिकारीका संसारमें प्रभुत्व होना अच्छा नहीं है, इस

कारण अंगरेजोंको मदद देनी चाहिए। कुछका विचार हुआ कि भारतको अपना उद्धार करनेका यही अच्छा मौका है। उसे इंगलैण्डकी मदद न करनी चाहिए और अपनी ही फिकर करनी चाहिए। युद्धके गुणदोषमें हमें यहाँ नहीं पड़ना है। अवश्य ही बहुतसे लोग नौकरी या व्यापारमें अपना लाभ करने लगे। कुछ अंगरेजोंकी सहायता करने लगे। अधिकतर किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर जो होगा देखा जायगा के भावसे चुप पड़े रहे। कुछ इस आशामें रहे कि अराजकता हो तो हमें अपना लाभ करनेका मौका मिलेगा, हम अपनी व्यक्तिगत आर्थिक और सामाजिक स्थितिकी अपनी चालाकी या शक्तिसे उन्नति कर लेंगे। कांग्रेसने इस समय इङ्गलैण्डसे यह पूछा कि तुम क्यों लड़ रहे हो—युद्धका और अन्तमें सन्धिका तुम्हारा क्या उद्देश्य है। इङ्गलैण्डका कहना था कि हम सारे संसारकी स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहे हैं। जर्मनी धड़ाधड़ एक देशके बाद दूसरे देशको अपने अधीन करता गया और जिनकी स्वतन्त्रताके लिये अङ्गरेज लड़ते हुए अपनेको बतला रहे थे उनके लिये कार्यतः वे कुछ न कर सके। वास्तवमें लड़ाई इङ्गलैण्ड और जर्मनीकी थी और यही रूप इसने जल्दी ही ले भी लिया। भारतकी तरफसे कांग्रेसका कहना था—यदि तुम स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहे हो, अधीन जातियोंके उद्धारके लिये लड़ रहे हो, तो हमें जो तुम्हारे अधीन हैं, फौरन स्वतन्त्र कर तुम अपनी सचाईका सबूत क्यों नहीं देते? यदि हम स्वतन्त्र हो जायँ और तुम्हारी ईमानदारीकी परख कर ले तो हम स्वेच्छासे तुम्हारे साथ हो सकेंगे। तुम्हारे सम्बन्धका हमारा पुराना अनुभव तुम्हारी बातों मात्रपर विश्वास करनेसे हमें रोकता है। गुलामोंकी तरह तुम्हारे अधीन होकर हमारी सहायता किस मूल्यकी हो सकती है। उसका देना हमारे लिये उतना ही सारहीन है जितना तुम्हारा लेना निरर्थक है।

इङ्गलैण्डकी तरफसे कहा गया कि हमारा युद्धका एकमात्र उद्देश्य यही है कि हम जीतें। बाकी बातें इस समय नहीं कही जा सकतीं। फिर हमारे बीच सदा मौजूद साम्प्रदायिक मनोमालिन्यको दिखलाकर कहा गया कि क्या इसीके बूते तुम स्वराज चाहते हो? युद्धमें अपनी व्यग्रताके कारण, हमारी असहाय अवस्थाके कारण, देशमें जो कुछ मदद पानेकी सम्भावना हो सकती थी उसे बिना किसी राजनीतिक संस्थाओंकी सहायताके पूरी तरह प्राप्त कर सकनेके कारण, कांग्रेसकी माँगकी तरफ इंगलैण्डके अधिकारियोंकी उपेक्षा थी। ऐसी अवस्थामें कांग्रेसने अपनेको लड़ाईके विरुद्ध घोषित कर दिया। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने इस्तीफा दे दिया। उनके सब अधिकार गवर्नरोंको मिल गये और वे अनियन्त्रित शासन करने लगे। जाब्तेसे महात्मा गांधीको कांग्रेसने अपना सर्वाधिकार सिपुर्द कर दिया। युद्ध-विरोधी सत्याग्रह आरम्भ हो गया। पहलेकी ही तरह कांग्रेसजन जेलोंमें जाने लगे। यूरोपके दूसरे महायुद्धके चलते सवा वर्ष होते आये। उसके अन्तका कोई चिन्ह नहीं है। कब होगा कोई ठिकाना नहीं। उसकी ज्वाला फैलती ही जा रही है। यूरोपके करीब करीब सब ही देशोंको जर्मनीने अपने अधीन कर लिया है। दक्षिण और पूर्वकी तरफ भी वह बढ़ता हुआ मालूम पड़ रहा है। इंगलैंडपर भी लगातार हवाई हमले कर रहा है और वहाँके जनधनका बड़ा नाश हो रहा है। अंगरेज भी बड़ा दृढ़ताके साथ अपनी जन्मभूमिकी रक्षा और संसारमें अपने पदको बनाये रखनेके लिये जान छोड़कर लड़ रहे हैं। सारा संसार इस महाभारतके अन्तिम परिणामकी उत्कण्ठा और उत्सुकतासे, कभी आशावान् और कभी भयभीत होकर, प्रतीक्षा कर रहा है।

---

(५०)

भारत और भावी संसार

हम भारतीयोंको अपने उद्धार करनेका सदा ही मौका मिलता रहा है। हमारे बीच बड़े बड़े व्यक्तिविशेष आते रहे हैं, हमारेमें व्यक्तिगत गुण भी बहुतसे हैं। स्थितियाँ भी हमारे अनुकूल अकसर ही हो गयी हैं। पर हम सब अवसर सदा खोते ही रहे। हम वैसीकी वैसी अवस्थामें सदा पड़े रहते हैं। दुःखी होते हैं, झुँझलाते हैं, अपनी निरर्थकता और मूर्खताका अनुभव भी करते हैं पर हम अपने देशका उद्धार नहीं कर पाते। कभी तो यही विचार होता है कि हमारे लिये कोई आशा नहीं है। हम ऐसे ही रहेंगे। दुनियाकी शक्तिशाली जातियोंके हम शिकार होते रहेंगे, उनके आमोद प्रमोदकी रंगभूमि मात्र बने रहेंगे। हम झुँझलायगे, हम झगडेंगे, पर अन्तमें कुछ कर न पायेंगे। हमारा इतिहास, हमारी सामाजिक व्यवस्था, हमारी व्यक्तिगत प्रकृति सब इसी परिणामपर पहुँचनेको हमें जैसे बाध्य करती है। क्या बात है कि हम ऐसे हैं। बड़ा बड़ा काम हमने किया, बडा बड़ा साहस हमने दिखलाया, बड़ी बड़ी कृतियाँ हमने तयार कीं, बड़े बड़े ग्रन्थ हमने लिखे। हमारी भूमि बड़ी विशाल है, हमारे यहाँ अन्न, जल, वस्त्रकी कमी नहीं है। हम क्यों ऐसे हैं, विचार करनेकी बात है। अपनी त्रुटियोंको पहचान कर उन्हे दूर करनेमें ही हमारा उद्धार है। हममें देशभक्ति नहीं है। आत्मभक्ति, कुटुम्बभक्तिके भी ऊपर जब हममें देशभक्ति आवेगी तब ही हम देशके लिये सब कुछ त्याग देनेको तयार होंगे, तब ही उसकी दासतामें हम लज्जाका अनुभव करेंगे। हम व्यक्तिवादी हैं, इस

कारण हम दूसरोंके साथ मिलकर काम नहीं कर सकते। बिना संघटनके कोई काम नहीं हो सकता। सब बातोंमें अपनी ही जिद नहीं चल सकती। बहुमतको मानकर उसके अनुरूप चलनेमें ही अन्तमें अपना भी लाभ है। सब किसीके अपनी अपनी ढपली अलग अलग बजानेमें सबकी ही हानि है। हमें सहिष्णुता सीखनी होगी। दूसरेकी नीयत भी अच्छी समझ उसकी बात सुननी होगी और अन्तमें सामूहिक निर्णय मानकर सामूहिक रूपसे काम करना होगा। हमें अपने ही सांसारिक आशय और आध्यात्मिक मोक्षकी चिन्ता नहीं करनी होगी। हमें संसार-को सत्य मानकर दूसरोंके अस्तित्वको भी सत्य मानकर दूसरोंके आराम तकलीफका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे विचार कर भ्रातृभाव फैलाना होगा। उसीमें सुन्दर सामाजिक जीवनका सुख हमें मिल सकेगा।

मनुष्योंमें नीच ऊंचका भाव जो हमारे नस नसमें है उसे हमें छोड़ना होगा। जातिभेद जो तिरस्कारका भाव पैदा करता है वह हानि-कर है। दूसरोंको छू सकने न छू सकनेका बड़ा भारी कर्मकाण्ड हमने बना रखा है, वह भी हानिकर है। उसके कारण केवल यही नहीं कि हम शारीरिक दृष्टिसे एक दूसरेसे दूर हैं, वास्तवमें हम एक दूसरेका विश्वास ही नहीं करते और न कर सकते हैं। अस्पृश्यता और अविश्वसनीयता हम सबको एक दूसरेसे दूर रखती है और साथ मिलकर हमारे काम करनेमें बाधक होती है। हमको भाग्यकुशल होना होगा। हमें भी नये मार्गोंपर चलना होगा। अपनी विशेषता बिना खोए हुए नये नये वैज्ञानिक आविष्कारोंको अपनाना होगा और उनका अपनी राष्ट्रीय उन्नतिके लिये सदुपयोग करना होगा। थोड़ेमें हमें अपने देशका और संसारका अच्छा नागरिक बनना होगा। हमें कूप-मण्डूकताका भाव छोड़कर संसारमें अपने

उपयुक्त स्थानको प्राप्त करनेका उद्योग करना होगा। वास्तवमें इस नये महायुद्धने हमको बड़ा ही अच्छा सुअवसर दिया था। यदि आज हम साहसके साथ अपनी आन्तरिक समस्याओंको हल कर पाते और इसी समय अपने आपसके झगड़ोंको विग्द और वीभत्स रूपसे संसारके सामने और खोलकर न रख देते तो हम केवल अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को ही न पा लेते पर हम संसारकी समस्याओंको हल करनेमें सहायक हो सकते थे। दासों और अधीनोंकी बात कौन सुनता है? वैभव प्राप्त पुरुषोंकी मूर्खता की भी बातें आदरसे सुनी जाती हैं, भिक्षुकोंको ज्ञानपूर्ण बातोंकी तरफ तो दूसरोंकी उपेक्षा ही रहती है।

हम इस समय भी निराश नहीं हैं। धीरे धीरे नये भाव हमारे यहाँ भी काम कर रहे हैं। इंगलैंडकी मुसीबतें ही उसे विवश कर हमें अपने पैरों खड़े होनेके लिये कहनेको बाध्य करेंगी। हम उस समय क्या करेंगे? क्या हम एक होकर संसारके सामने नये आदर्श उपस्थित कर सकेंगे जिससे न केवल हमारा ही वरन् सारे संसारका लाभ हो। क्या हम फिर संसारको सच्ची शान्तिकी तरफ न प्रवृत्त करेंगे। क्या हम अपने उदाहरण-से उसे न दिखलावेंगे कि किस प्रकार सचाई, सफाई, सादगीके साथ जीवन व्यतीत करनेमें ही सच्चा सुख है। क्या हम संसारको न बतावेंगे कि अमीर गरीब-का अन्तर रखना भयावह है, सब पेशोंका समान आदर सत्कार होना चाहिए, किसीके भी बाहरी जीवनमें ऐश्वर्य-मदका चिन्ह न रहना चाहिए। समुचित रूपसे समाज-व्यवस्थाका, आर्थिक प्रतिद्वन्द्विताको हटाकर, मान, ज्ञान, दाम, आरामका समुचित बँटवारा कर जीवन निर्वाह करना चाहिए। सब देशोंको अपनेसे सन्तुष्ट रहना चाहिए और दूसरोंमें मैत्रीका भाव रखना चाहिए। दूसरोंपर व्यर्थकी चढ़ाई कर, दूसरोंको दबानेका प्रयत्न

नहीं करना चाहिए। आत्मसम्मानके साथ, शान्तिके साथ, परस्पर प्रेमके साथ, भ्रातृभावके साथ, संसारके सब देशोंको रहना चाहिए। विज्ञानकी ही नहीं ज्ञानकी भी खोज करनी चाहिए, केवल ऐहिक सुख नहीं आध्यात्मिक सुख भी खोजना चाहिए, केवल इस लोकका ही नहीं परलोकका भी चिन्तन करना चाहिए। भारत यह सब शिक्षा संसारको दे सकता है। भारतमें अब भी इतनी शक्ति है कि वह ऐसा कर सके। भारतीयोंको जाग्रत होना है, उन्हें आँख खोलकर देखना है, उन्हें बुद्धिसे काम लेना है, उन्हें अपने साधनोंको पहचानना है। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। इतने दिनोंके दुःख, दारिद्र्य, दासताका भी अच्छा परिणाम हो सकता है यदि हम आज भी चेतें और विश्वव्यापी नयी लौकिक और पारलौकिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका सदुपयोग करें। हम भारत भूखण्डको एक रखकर भी इसके प्रदेशोंको इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं कि सबकी स्वतन्त्रताकी रक्षा हो, सबको ही अपने विकासका अवसर मिलता रहे। भारतकी सब भाषाएँ जीती रहें और उन्नति करें, भारतके सब सम्प्रदाय जीवित रहें और उन्नति करें, भारतके सब लोग मिलकर अपनी और संसारकी रक्षा कर सकें और भारतकी एक सुन्दर सामूहिक संस्कृति तयार हो जो भारतके निवासियोंकी विशेषता हो, जिससे किसीको कष्ट न हो पर सबको सहायता मिले। संसारके राष्ट्रोंमें भारतको उचित, उपयुक्त, सम्मानित पद मिले और उसके द्वारा सबको ही ऐसा पद दिया जाय। यह भी सबके साथ संसारके शारीरिक उद्योगों और मानसिक विचारोंके प्रवर्तन और प्रदर्शनमें समुचित भाग लेकर समाजकी उन्नति और विकासमें पर्याप्त और उपयुक्त सहायता पहुँचावे—यही हमारा आदर्श होना चाहिए, इसीके ही लिये हमें सतत प्रयत्न करना चाहिए, इसीसे

कार्यान्वित कर हमें कृतकृत्य होना चाहिए। भारतका संसारमें यही कार्य है और वह ऐसा कर सकेगा या नहीं यह हम भारतीयोंपर ही निर्भर करता है। हम अपना जीवन सार्थक करना चाहते हैं अथवा निरर्थक ही रहनेमें संतुष्ट हैं—इसका भी उत्तर हम ही दे सकते हैं।